सुश्रुत संहिता प्रदीपिका

प्रथम खण्ड

डा. अजय कुमार

डा. टीना सिंघल

Copyrighted material

सुश्रुत तत्व प्रदीपिका

प्रथम खण्ड

(सूत्रस्थान से कल्पस्थान तक)

डा. अजय कुमार

प्रवक्ता, कायचिकित्सा विभाग

राजकीय स्नात्तकोत्तर आयुर्वेद महाविद्यालय एवं चिकित्सालय

वाराणसी

डा. टीना सिंघल

प्रवक्ता, रचना शारीर विभाग

राजकीय स्नात्तकोत्तर आयुर्वेद महाविद्यालय एवं चिकित्सालय

वाराणसी

प्रथम संस्करण, 2018

©डा0 अजय कुमार (सर्वाधिकार सुरक्षित)

Copyrighted material

सुश्रुत तत्व प्रदीपिका

सूत्र स्थान -अनुक्रमणिका

सुश्रुत सूत्रस्थान- 1 - वेदोत्पत्ति अध्याय 4

सुश्रुत सूत्रस्थान - 2 - शिष्योपनीयमध्यायं.....10

सुश्रुत सूत्रस्थान - 3 - अध्ययनसम्प्रदानीय 11

सुश्रुत सूत्रस्थान - 4 - प्रभाषणीयमध्यांय 16

सुश्रुत सूत्रस्थान - 5 - अग्रोपहरणीयमध्यांय 17

सुश्रुत सूत्रस्थान - 6 - ऋतुचर्यमध्यायम् 21

सुश्रुत सूत्रस्थान - 7 -यन्त्रविधिमध्यायम् 26

सुश्रुत सूत्रस्थान - 8 - शस्त्रावचारणीय 32

सुश्रुत सूत्रस्थान - 9 - योग्यासूत्रीय अध्याय.....36

सुश्रुत सूत्रस्थान - 10 - विशिखाऽनुप्रवेशनीय 37

सुश्रुत सूत्रस्थान - 11 - क्षारपाक विधि.....38

सुश्रुत सूत्रस्थान - 12 - अग्निकर्मविधि.....44

सुश्रुत सूत्रस्थान - 13 - जलौकावचारणीय 49

सुश्रुत सूत्रस्थान- 14 - शोणितवर्णनीय.....52

सुश्रुत सूत्रस्थान- 15 - दोषधातुमलक्षयवृद्धि.....57

सुश्रुत सूत्रस्थान- 16 - कर्णव्यधबन्धविधि.....65

सुश्रुत सूत्रस्थान- 17 - आमपक्वैषणीय.....69

© Dr. Ajay Kumar

Copyrighted material

सुश्रुत सूत्रस्थान- 18 - व्रणालेपन बन्धविधि 72

सुश्रुत सूत्रस्थान- 19 - व्रणितोपासनीय 76

सुश्रुत सूत्रस्थान- 20 - हिताहितीय 77

सुश्रुत सूत्रस्थान- 21 - व्रणप्रष्नमध्याय 80

सुश्रुत सूत्रस्थान- 22 - व्रणास्रावमध्याय 84

सुश्रुत सूत्रस्थान- 23 - कृत्याकृत्य विधि.....86

सुश्रुत सूत्रस्थान- 24 - व्याधिसमुदेषीय 89

सुश्रुत सूत्रस्थान- 25 - अश्टविधषस्त्रकर्मीय.....92

सुश्रुत सूत्रस्थान- 26 - प्रनश्टषल्यविज्ञानीय 95

सुश्रुत सूत्रस्थान - 27 - षल्यापनयनीय 98

सुश्रुत सूत्रस्थान- 29 - विपरीताविपरीस्वप्न.....101

सुश्रुत सूत्रस्थान - 30 - पन्चेन्द्रियार्थविप्रतिपति 102

सुश्रुत सूत्रस्थान - 31 - छायाविप्रतिपत्ति.....103

सुश्रुत सूत्रस्थान - 32 - स्वभावविप्रतिपत्ति.....104

सुश्रुत सूत्रस्थान - 33 - अवारणीयम्.....105

सुश्रुत सूत्रस्थान - 34 - युक्तसेनीय.....107

सुश्रुत सूत्रस्थान - 35 - आतुरोपक्रमणीय 109

सुश्रुत सूत्रस्थान - 36 - मिश्रक अध्याय.....113

सुश्रुत सूत्रस्थान - 37 - भूमिप्रविभागीय अध्याय 114

सुश्रुत सूत्रस्थान - 38 - द्रव्यसंग्रहणीय अध्याय.....115

© Dr. Ajay Kumar

Copyrighted material

सुश्रुत सूत्रस्थान - 39 - संषोधनषमनीय अध्याय 121

सुश्रुत सूत्रस्थान - 40 - द्रव्यरसगुणवीर्यविपाकविज्ञान.....122

सुश्रुत सूत्रस्थान - 41 - द्रव्यविषेशविज्ञानीय.....123

सुश्रुत सूत्रस्थान - 42 - रसविषेशविज्ञानीय अध्याय.....125

सुश्रुत सूत्रस्थान - 43 - वमनद्रव्यविकल्पविज्ञानीय.....126

सुश्रुत सूत्रस्थान - 44 - विरेचनद्रव्यविकल्पविज्ञानीय.....127

सुश्रुत सूत्रस्थान - 45 - द्रवद्रव्यविधि.....128

सुश्रुत सूत्रस्थान - 46 - अन्नपानविधि.....141

© Dr. Ajay Kumar

Copyrighted material

सुश्रुत सूत्रस्थान- 1 - वेदोत्पत्ति अध्याय

- प्रारंभिक श्लोक में 'अथ' शब्द मंगलाचरणः का द्योतक है।
- चरक एवं महाभास्य में भी सर्वप्रथम मंगलार्थ 'अथ' शब्द का प्रयोग हुआ है।
- इस अध्याय में 'वेद' शब्द से आयुर्वेद का ग्रहण किया गया है।
- चरक ने भी च.सूत्र अध्याय 1 में 'वेद' शब्द से 'आयुर्वेद' का ग्रहण किया है।
- 'भगवान' शब्द का प्रयोग षड्विध ऐश्वर्य सम्पन्न विशिष्ट आत्मा के लिए होता है। चरक में ऐसे शक्ति सम्पन्न पुरूष को 'योगिकोटि' में माना है तथा योगियों का अष्टविध ऐश्वर्य स्पष्टतया वर्णित है।
- भागवत में विष्णु के अंशांश से धन्वन्तरि की उत्पत्ति बताई गयी है

  धन्वन्तरिः - धनुः = शल्यं, तस्यात्तं = पारमियति गच्छतीति धन्वन्तरिः।
- शल्य शास्त्र का समयक् ज्ञाता धन्वन्तरि कहलाता है।
- भगवान धन्वन्तरि के पास ज्ञान प्राप्त करने आने वाले महर्षिगण निम्न थे
  1. औपधेनव
  2. वैतरण
  3. औरभ्र
  4. पौष्कलावत
  5. करवीर्य
  6. गोपुररक्षित इत्यादि
- आयुर्वेद 'अथर्ववेद' का उपांग है इसके 8 भाग है -अष्टांग आयुर्वेद

  इह खल्वायुर्वेदं नामोपाङ्गमथर्ववेदस्यानुत्पाद्यैव प्रजाः श्लोकशतसहस्रमध्यायसहस्रं च कृतवान् स्वयम्भूः, ततोऽल्पायुष्ट्वमल्पमेधस्त्वं चालोक्य नराणां भूयोऽष्टधा प्रणीतवान् ॥६॥
- पूर्वकाल में ब्रह्मदेव ने सृष्टि रचना से पूर्व इस आयुर्वेद को एक लाख श्लोक एवं एक हजार अध्यायों के रूप में बनाया था। पुनः उस आयुर्वेद को 8 भागों में विभक्त कर दिया।
- सुश्रुत, चरक तथा हस्त्यायुर्वेद ने आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपांग माना है। किन्तु व्यासकृत चरणव्यूह एवं शंकरोक्त आयुर्वेद ग्रन्थों में इसे ऋग्वेद का उपांग माना है।
- अष्टांग संग्रहकार ने सुश्रुत संहितानुसार आयुर्वेद की आठ भागो में विभक्ति ब्रह्मदेव कृत न मानकर अग्निवेशादिकृत मानी है।
- आयुर्वेद के अष्टांग -
  - शल्य
  - शालाक्य
  - कायचिकित्सा

Copyrighted material

- भूतविधा
- कौमारभृत्य
- अंगदतन्त्र
- रसायन तन्त्र
- वाजीकरण तन्त्र

- **शल्य तन्त्र-**

  "तत्र शल्यं नाम विविध तृण काष्ठ पाषाण पांशुलोहलोष्ट्रास्थि बालनखपूयास्राव दुष्टव्रणान्तर्गतशल्योद्धरणार्थ, यन्त्र शस्त्र क्षाराग्नि प्राणिधान व्रण विनिश्चयार्थन्च।।"

- **शालाक्य तन्त्र-**

  "उध्वजत्रुगतानां रोगाणां श्रवणनयनवदन घ्राणादिसंश्रितानां व्याधीनामुपशमनार्थम्, शलाकायन्त्र प्रणिधानार्थंच।।'

- **कायचिकित्सा –**

  कायचिकित्सा नाम सर्वाङ्गसंश्रितानां व्याधीनां ज्वररक्तपित्तशोषोन्मादापस्मार कुष्ठमेहातिसारादीनामुपशमनार्थम् (३) |८|

- **भूत विद्या –**

  भूतविद्या नाम देवासुरगन्धर्वयक्षरक्षःपितृपिशाचनागग्रहाद्युपसृष्टचेतसां शान्तिकर्मबलिहरणादिग्रहोपशमनार्थम् (४) |८|

-जिस अंग में दैव, दैत्य, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पितर, पिशाच, नाग, आदि ग्रहों से पीड़ित चित वाले रोगियों की शान्ति के लिए शान्तिपाठ, बलिप्रदान, हवन आदि ग्रह दोष शामक क्रियाओं का वर्णन किया गया हो उसे 'भूत विद्या' कहते हैं।

- **कौमारभृत्य -**

  'कौमार भृत्यं नाम कुमार भरण धात्री क्षीर दोष संशोधनार्थ दुष्टस्तन्यग्रह समुत्थानाम् च व्याधीनामुपशमनार्थम्"

- **अगदतन्त्र -**

  "अगदतन्त्रंनाम सर्पकीट लूता मूषिकादि दष्टविषव्यन्जनार्थ विविध विष संयोगोपशमनार्थंच।

  -अष्टांग हृदय एवं अष्टांग संग्रह में इसे द्रंष्ट्रा चिकित्सा एवं चरक संहिता में इसे विषगरवैरोधिकप्रशमन कहते है।

- **रसायन तन्त्र-**

  रसायनतन्त्र नाम वयःस्थापनमायुर्मेधाबलकरं रोगापहरणम् समर्थम् च।

Copyrighted material

- चरक मतानुसार -

  लाभोपायोहि शस्तानाम् रसादीनां रसायनम्।

- शारंगधर -

  रसायन यज्ज्ञेंय यज्जराव्याधिनाशनम्।

- **वाजीकरण -**

  वाजीकरण तन्त्र नामाल्पदुष्टक्षीणविशुष्करेत सामाप्यायन प्रसादोपचयजनन निमित्तं प्रहर्ष जननार्थन्च।।

- **आयुर्वेद का प्रयोजन - (प्रथम अध्याय में वर्णन)**

  इह खल्वायुर्वेद प्रयोजनं - व्याध्युपसृष्टानां व्याधिपरिमोक्षः स्वस्थस्यः रक्षणम् च।

- चरक ने भी यही आयुर्वेद का प्रयोजन माना है किन्तु वहां प्रथम स्वास्थ्य रक्षण एवं बाद में रोग मुक्ति ऐसा क्रम दिया गया है।

  प्रयोजन चास्य स्वस्थस्यस्वास्थ्यरक्षणं आतुरस्यविकार प्रशमनं च||

- आयुर्वेद परिभाषा –

  'आयुरस्मिन् विद्यते, अनेन वाऽऽयुर्विन्दन्ति' इत्यायुर्वेदः ||१५||

- आयुर्वेद के सर्वश्रेष्ठ एवं आद्य अंग का महर्षि धन्वतरि ने चार प्रमाणों से अवरूद्ध उपदेश दिया है-

  तस्याङ्गवरमाद्यं प्रत्यक्षागमानुमानोपमानैरविरुद्धमुच्यमानमुपधारय ||१६||

  1. प्रत्यक्ष
  2. आगम
  3. अनुमान
  4. उपमान

- उपरोक्त उपरोक्त चार प्रमाण महर्षि गौतम के मत से है।
- वैशेषिक एवं सांख्य के मत से प्रमाण तीन है -
  1. प्रत्यक्ष,
  2. आगम,
  3. अनुमान।
- चरक ने अलग अलग जगहों पर चार एवं तीन प्रमाण माने है।
- शल्य शालाक्यादि 8 अंगों में शल्य अंग ही मुख्य है क्योंकि पूर्व समय में देव-दानव युद्ध में प्रहारजन्य व्रणों का रोपण करने से तथा यक्ष के कटे सिर का सन्धान कर देने से इसी अंग को प्रधान माना है।

  एतद्ध्यङ्गं प्रथमं, प्रागभिघातव्रणसंरोहाद्यज्ञशिरःसन्धानाच्च |

- आशुक्रिया करने से, तथा

Copyrighted material

यन्त्र शस्त्र, क्षार और
अग्नि का प्रयोग करने से तथा अन्य सर्वतन्त्रों के समान चिकित्सा इसमें होने से 8 तन्त्रों में यही शल्य तन्त्र अधिक माननीय है।

अष्टास्वपि चायुर्वेदतन्त्रेष्वेतदेवाधिकमभिमतम्,

आशुक्रियाकरणाद्यन्त्रशस्त्रक्षाराग्निप्रणिधानात् सर्वतन्त्रसामान्याच्च ||१८||

- चरक ने भी गुल्म , उदर रोग, अर्श प्रकरण में शल्य चिकित्सा को ही महत्व दिया है।

  तदिदं शाश्वंत पुण्यं स्वर्ग्य यशस्यमायुष्यं वृतिकरन्चेति।

- **आयुर्वेदावरण** -

ब्रह्मा

↓

दक्ष प्रजापति

↓

अश्विनीकुमार द्वय

↓

इन्द्र

↓

धन्वन्तरि

- पुराणों में समुद्रमंथन के समय धन्वन्तरि की उत्पत्ति लिखी है।

  अहं हि धन्वन्तरिरादिदेवो जरारुजामृत्युहरोऽमराणाम् |

  शल्याङ्गमङ्गैरपरैरुपेतं प्राप्तोऽस्मि गां भूय इहोपदेष्टुम् ||२१||

- भागवत मे विष्णु के अंशांश से धन्वन्तरि की उत्पत्ति मानी गयी है।
- पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश एवं आत्मा (शरीरी) इनके संयोग को पुरूष कहा जाता है।

  अस्मिञ्छास्त्रे पञ्चमहाभूतशरीरिसमवायः पुरुष इत्युच्यते |

- सजीव सृष्टि दो प्रकार की होती है –

  लोको हि द्विविधः स्थावरो जङ्गमश्च; द्विविधात्मक एवाग्नेयः, सौम्यश्च, तद्भूयस्त्वात्;

  पञ्चात्मको वा;

  - 1.स्थावर एवम् जाङ्गम या
  - 2.आग्नेय एवं सौम्य।

Copyrighted material

- पन्च महाभूतों से बनी होने के कारण सजीव सृष्टि **पन्चात्मिका** है।
- सृष्टि में पुरूष प्रधान है। चरक ने भी 6 तत्वों के संयोग को पुरूष माना है। पुरूष के लिए चरक ने लोक शब्द का प्रयोग किया है।
- चतुर्विध भूतग्राम –

  तत्र चतुर्विधो भूतग्रामः संस्वेदजजरायुजाण्डजोद्भिज्जसञ्ज्ञः ;

  - स्वेदज,
  - जरायुज,
  - अण्डज और
  - उद्भिज
- व्याधि -

  "तद्दुरवसंयोगाव्याधय उच्यन्ते।"

  जिनके संयोग से मनुष्य को दु:ख होता है उसे व्याधि कहते है।
- ये चार प्रकार की होती है -
  1. आगन्तुज
  2. शारीरिक
  3. मानसिक
  4. स्वाभाविक
- स्वाभाविक रोग -

  - भूख, प्यास, वृद्धावस्था, मृत्यु एवं निद्रा
- चारों प्रकार के रोगों के अधिष्ठान - मन एवं शरीर
- इन रोगों का निग्रह या प्रतीकार देष, काल, वय, मात्रा आदि रूप से सम्यक प्रयुक्त इन चार उपायों से होता है
  - संशोधन
  - संशमन
  - आहार
  - विहार
- प्राणियों के जीवन का मूल कारण 'आहार' है।
- आहार 'षडरसात्मक' या 'षड्रसाश्रयी' होता है।
- रस द्रव्यों के आश्रित होते हैं, औषधियों को द्रव्य कहा जाता है।
- **औषधि के भेद** - 2
  1. स्थावर एवं
  2. जाङ्गम्
- **स्थावर** - 4

Copyrighted material

1. वनस्पति - पुष्प न हो, फल आते है
2. वृक्ष - पुष्प एवं फल दोनो आते हैं।
3. वीरूध - जो फैलने वाली या गुल्म के स्वरूप हो।
4. ओषधि - जो फलों के पकने तक ही जीवित रहती है।

- **जाङ्गम्** - (4)
    - जरायुज - पशु, मनुष्य, व्याल आदि।
    - अण्डज - पक्षी, सर्प इत्यादि।
    - स्वेदज - कृमि, कीट पिपिलिका आदि।
    - उद्भिज - इन्द्रगोप, मेढ़क आदि।
- 'मनुस्मृति' में जाङ्गम सृष्टि के तीन ही भाग किए गये हैं | उद्भिज जीवों का समावेश अण्डज में ही कर दिया है। उद्भिजगणों के लिए स्थावर का प्रयोग किया गया है।
- स्थावर औषधियों के छाल, पत्र, पुष्प, फल, मूल, कन्द एवं निर्यास एवं स्वरस प्रयुक्त होते हैं। (कुल संख्या -8)
- जाङ्गम् औषधियों के चर्म, नख, रोग और रक्तादि का प्रयोग होता है। (कुल संख्या -4)
- पार्थिव द्रव्यों में सुवर्ण, रजत, मणि, मुक्ता, मनःशिला, मिट्टी तथा कपाल का उपयोग होता है। (कुल संख्या -7)
- चिकित्सा हित की दृष्टि से काल कृत विषेशताएं उपयोगी होती है।
- ब्रह्मा ने आयुर्वेद का स्मरण किया इसीलिए वेदों को अपौरुषेय या 'कर्तरहित' माना गया है।
- सबसे प्राचीन एवं प्रथम वेद 'ऋग्वेद' को माना गया है।
- **चिकित्सा शास्त्र का बीज** -
    - पुरुष
    - व्याधि
    - औषध
    - क्रियाकाल

Copyrighted material

सुश्रुत सूत्रस्थान - 2 – शिष्योपनीयमध्यायं

- 'उपनयन' शब्द का अर्थ अध्ययन के लिए शिष्य का गुरू के समीप जाना है।
  - ब्रह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इनमें से किसी एक को उपनयन कर सकते है |
  - ब्रह्म की स्थापना - दक्षिण दिशा में करते है |
- ब्राह्मण तीनों वर्णो के लड़कों का उपनयन कर सकता है।
- क्षत्रिय दो वर्ण एवं वैश्य केवल एक वर्ण का ही उपनयन कर सकता है।
- शूद्र को भी यदि वह उत्तम कुल एवं अच्छे गुणों वाला हो तो उसे वैदिक मन्त्र वर्जन पूर्वक तथा उपनयन संस्कार के बिना ही आयुर्वेद का अध्यापन करा सकतें हैं।
- आयुर्वेद में पक्ष में तीन बार अर्थात् 5-5 दिन पर नख, दाढ़ी, केश एवं लोम काटने का उपदेश है।
- अध्ययन वर्जनीय काल -
  - 8, 14, 15 के सभी पक्ष (अष्टमी , चतुर्दशी , पूर्णिमा)
  - कृष्ण पक्ष की अष्टमी एवं कृष्ण पक्ष की समाप्ति के दिन
  - शुक्ल पक्ष की अष्टमी, चतुर्दशी, एवं पूर्णिमा
  - सूर्योदय एवं सूर्यास्त के समय

Copyrighted material

सुश्रुत सूत्रस्थान - 3 - अध्ययनसम्प्रदानीय

- सुश्रुत संहिता में कुल 120 अध्याय है | वे पांच स्थानों में विभक्त हैं-

1.	सूत्र स्थान	46
2.	निदान स्थान	16
3.	शारीर स्थान	10
4.	चिकित्सा स्थान	40
5.	कल्प स्थान	08
	कुल	= 120

- इसके पश्चात उत्तरतन्त्र के 66 अध्याय हैं।

सूत्र स्थान के अध्याय – कुल ४६ अध्याय

- सूचनात, सूत्रणात्, सवदनात्
  - आयुर्वेद के सूचन करने से,
  - अर्थो को योग्य स्थान पर रखने से तथा
  - अर्थ समुदाय की कल्पना करने से प्रारंभ के 46 अध्यायों का नाम सूत्र स्थान है।

1. वेदोत्पत्ति	24. व्याधिसमुद्देशीय
2. शिष्योपनीय	25. अष्टविध शस्त्रकर्मीय
3. अध्ययनसम्प्रदानीय	26. प्रनष्ट शल्य विज्ञानीय
4. प्रभाषणीय	27. शल्यापनमनीय
5. अग्रोपहरणीय	28. विपरीताविपरीत व्रण विज्ञानीय
6. ऋतुचर्या	29. विपरीताविपरीत दूत शकुन स्वप्न निदर्शनीय
7. यन्त्रविधि	30. पंचेन्द्रियार्थविप्रतिपत्ति
8. शस्त्रावचारणीय	31. छाया विप्रतिपत्ति
9. योग्यासूत्रीय	32. स्वभाव विप्रतिपत्ति
10. विशिखानुप्रवेशीय	33. अवारणीय
11. क्षारपाकविधि	34. युक्त सेनीय
12. अग्निकर्म विधि	35. आतुरोपक्रमणीय
13. जलौकावचारणीय	36. भूमि प्रतिभाग विज्ञानीन
14. शोणित वर्णनीय	37. मिश्रक
15. दोष धातुमल क्षय वृद्धि विज्ञानीय	38. द्रव्य संग्रहणीय

Copyrighted material

16. कर्णव्यधबन्धविधि	39. संशोधन शमनीय
17. आमपक्वैषणीय	40. द्रव्यरस गुण
18. व्रणालेपनबन्धविधि	41. द्रव्य विशेषविज्ञानीय
19. व्रणितोपासनीय	42. रस विशेष विज्ञानीय
20. हिताहितीय	43. वमनद्रव्य विकल्प वि
21. व्रणप्रश्न	44. विरेचनद्रव्य विकल्प वि.
22. व्रणास्राव विज्ञानीय	45. द्रव द्रव्य विधि
23. कृत्याकृत्य विधि	46. अन्न पान विधि

निदान स्थान के अध्याय -

- हेतु लक्षण निर्देशात्

  - रोगोत्पत्ति का कारण (हेतु) तथा रोगों का लक्षण का निर्देश (ज्ञापन) करने से 16 अध्यायों को निदान स्थान के नाम से जानते हैं।

1. वातव्याधि	9. विद्रधि
2. अर्श	10.परिसर्प (विसर्पनाड़ीस्तन रोग)
3. अश्मरी	11. ग्रन्थि (ग्रन्थ्यर्बुदगलगण्ड)
4. भगन्दर	12. वृद्धि (वृद्ध्युपदंशश्लीपद)
5. कुष्ठ	13. क्षुद्ररोग
6. प्रमेह	14. शूकदोष
7. उदर	15. भग्न
8. मूढ़गर्भ	16. मुखरोग

शारीर स्थान के अध्याय -

- शरीरस्य विज्ञानार्थम्

1. सर्वभूत चिन्ताशारीर	6. प्रत्येक मर्म निर्देश
2. शुक्रशोणित शुद्धि	7. सिरावर्णन विभक्ति
3. ग्रर्भावक्रान्ति	8. सिराव्यधविधि
4. गर्भव्याकरण	9. धमनी व्याकरण
5. शरीर संख्याव्याकरण	10. गर्भिणी व्याकरण

चिकित्सा स्थान के अध्याय -

Copyrighted material

- प्रायश्चित, प्रशमन, चिकित्सा एवं शान्तिकर्म ये सब शब्द परस्पर पर्यायवाचक हैं। इनका व्याख्यान इन अध्यायों में करने से इनको चिकित्सा स्थान कहते हैं।

1. द्विव्रणीय	21. शूकरोग
2. सद्योव्रण	22. मुखरोग
3. भग्न	23. शोफ
4. वातव्याधि	24. अनागताबाधाप्रतिषेधनीय
5. महावात व्याधि	25. मिश्रक
6. अर्श	26. क्षीणबलीयवाजीकरण
7. अश्मरी	27. सर्वाबाधा शमनीय रसायन
8. भगन्दर	28. मेधायुष्कामीय रसायन
9. कुष्ठ	29. स्वभावव्याधिप्रतिषेधनीय रसायन
10. महाकुष्ठ	30. निवृत सन्तापीय रसायन
11. प्रमेह	31. स्नेहोपयौगिक
12. प्रमेह-पिडका	32. स्वेदावचारणीय
13. मधुमेह	33. वमनविरेचनसाध्योपद्रव
14. उदर	34. वमनविरेचनव्यापत्
15. मूढ़गर्भ	35. नेत्रबस्ति प्रमाणप्रविभाग
16. विद्रधि	36. नेत्रबस्तिव्यापत्
17. विसर्प (विसर्प नाड़ी स्तनरोग)	37. अनुवासन बस्ति
18. ग्रन्थि (ग्रन्थ्यपचपर्बुदगलगण्ड)	38. निरुहक्रम
19. वृद्धि (वृद्धिउपदंश श्लीपद)	39. आतुरोपद्रव
20. क्षुद्ररोग	40. धूमनस्यकवलग्रह

कल्प स्थान के अध्याय -

- इन आठ अध्यायों में विषचिकित्सा की कल्पना होने के कारण इनको 'कल्प स्थान' कहते हैं। - "विषभेषजकल्पनात्"

1. अन्नपान रक्षा विज्ञान	5. सर्पदष्टविषचिकित्सा
2. स्थावरविष विज्ञान	6. दुन्दुभिस्वनीय
3. जाङ्गविष विज्ञान	7. मूषिक कल्प
4. सर्पदष्टविष विज्ञान	8. कीट कल्प

Copyrighted material

उत्तर तन्त्र के अध्याय -

- इस तन्त्र के श्रेष्ठ होने के कारण इसे उत्तर तन्त्र कहा है क्योंकि इस तन्त्र में अनेक शालाक्यादि तन्त्रों के अर्थो का संग्रह है।
- पश्चिम अर्थात अन्तिम होने के कारण भी इसे उत्तर तन्त्र कहते हैं।
- व्रणों के ज्वरादि उपद्रवों का विचार करने के लिए यह तन्त्र बनाया गया है इसीलिए इस तन्त्र के प्रारंभिक अध्याय को औपद्रविक अध्याय कहते हैं।
- सन्धि, वर्त्म , शुक्ल, कृष्ण, सर्वगत और दृष्टि इनके रोगों को जानने के लिए पृथक-पृथक अध्याय बताया है

8. चिकित्सित प्रविभाग विज्ञानीय	18. क्रियाकल्प
9. वाताभिष्यन्द प्रतिषेध	19. नयनाभिघात प्रतिषेध
10. पित्ताभिष्यन्द प्रतिषेध	20. कर्णगतरोग विज्ञानीय
11. श्लेष्माभिष्यन्द प्रतिषेध	21. कर्णगतरोग प्रतिषेध
12. रक्ताभिष्यन्द प्रतिषेध	22. नासागत रोग विज्ञानीय
13. लेख्य रोग प्रतिषेध	23. नासागत रोग प्रतिषेध
14. मेधरोग प्रतिषेध	24. प्रतिश्याय प्रतिषेध
15. छेद्यरोग प्रतिषेध	25. शिरोरोग विज्ञानीय
16. पक्ष्मकोप प्रतिषेध	26. शिरोरोग प्रतिषेध
17. दृष्टिगत रोग प्रतिषेध	

- उपरोक्त सभी 26 अध्यायों को 'शालाक्यतन्त्र' कहते हैं।
- इसके आगे निम्न 12 अध्याय एवं शरीर स्थान में वर्णित रजःशुद्धि एवं गर्भावक्रान्ति आदि 'कौमार तन्त्र' के अध्याय है।

27. नवग्रहाकृति विज्ञानीय	33. अन्धपूतना प्रतिषेध
28. स्कन्दग्रह प्रतिषेध	34. शीतपूतना प्रतिषेध
29. स्कन्दापस्मार प्रतिषेध	35. मुखमण्डिका प्रतिषेध
30. शकुनि प्रतिषेध	36. नैगमेष प्रतिषेध
31. रेवती प्रतिषेध	37. ग्रहोत्पत्ति
32. पूतना प्रतिषेध	38. योनिव्यापद प्रत्तिषेध

- गणनाथ सेन ने प्रसूतितन्त्र को शारीर में, मूढ़गर्भ चिकित्सा को शल्यतन्त्र में समाविष्ट कर प्रसूति तन्त्र को कौमार भृत्य से भिन्न माना है।
- इसके आगे अध्यायों में कायचिकित्सा के रोगों का वर्णन है।

Copyrighted material

39. ज्वर	49. छर्दि
40. अतिसार	50. हिक्का
41. शोष	51. श्वास
42. गुल्म	52. कास
43. हृदयरोग	53. स्वरमेद
44. पाण्डुरोग	54. कृमिरोग
45. रक्तपित्त	55. उदावर्त
46. मूर्च्छा	56. विसूचिका
47. पानात्यय	57. अरोचक
48. तृष्णा	58. मूत्राघात
59. मूत्रवृच्छ	

- निम्न तीन अध्याय 'भूतविद्या' के अन्तर्गत आते हैं।

60. अमानुषोपसर्गप्रतिषेध	62. उन्माद प्रतिषेध
61. अपस्मार प्रतिषेध	

- निम्नोक्त (4) अध्याय "**उत्तर तन्त्र के भूषणभूत**" है।

63. रसभेद विकल्प	65. तन्त्रयुक्ति
64. स्वस्थवृत्त	66. दोषभेद विकल्प

- किस स्थान में कौन अंग का वर्णन है -
  - शालाक्य तन्त्र, कौमार तन्त्र, काय चिकित्सा एवं भूतविद्या ये चार विषय उत्तरतन्त्र में वर्णित हैं।
  - वाजीकरण एवं रसायन विधि चिकित्सास्थान में वर्णित हैं।
  - कल्पस्थान में विष तन्त्र का वर्णन है।
  - शल्य शास्त्र का वर्णन सर्वत्र है।

Copyrighted material

सुश्रुत सूत्रस्थान - 4 - प्रभाषणीयमध्यांय

- प्रभाषण-
  पढ़े हुए शास्त्र का विशेष ध्यान से अर्थानुसंधान पूर्वक जो व्याख्यान किया जाता है उसे 'प्रभाषण' कहते हैं।
- ओपधेनव, औरभ्र, सौश्रुत एवं पौषकलावत ये चार तन्त्र शेष सर्व शल्य तन्त्रों के मूल हैं।
- वर्तमान परिसंस्कृत सुश्रुत संहिता 'सौश्रुत तन्त्र' से भिन्न है।
- "यथा खरष्चचन्दन.....खरवद्वहन्ति।" सु.सू. 4

Copyrighted material

सुश्रुत सूत्रस्थान - 5 - अग्रोपहरणीयमध्यायं

- त्रिविध कर्म- पूर्वकर्म, प्रधानकर्म, पश्चातकर्म
- शस्त्रकर्म- (8)

1. छेदन	5. एषण
2. भेदन	6. आहरण
3. लेखन	7. विस्रावण
4. वेधन	8. सावन

- चरक ने पाटन, व्यधन, छेदन, लेखन, प्राच्छन, सीवन ये 6 शस्त्रकर्म माना है। एषण एवं आहरण को यन्त्र कर्म माना है
- वागभट्ट ने 13 शस्त्रकर्म माने हैं- उपरोक्त आठ के अतिरिक्त

9. उत्पाटन	12. ग्रहण
10. कुटटन	13. दारण
11. मन्थन	

- शस्त्र कर्म के लिए सामग्री-
  यन्त्र, शस्त्र, क्षार, अग्नि, शलाका, श्रृंग, जोंक, अलाबू (तुम्बी), जाम्बवौष्ठ, पिचु, प्रोत, सूत्र, पत्र, पट, मधु, घृत, चरबी, दुग्ध, तैल, सन्तर्पण द्रव्य, क्वाथ और लेप की औषधियां, कल्क, पंखा, ठण्डा एवं गर्म जल, कटाह आदि (27) लौह निर्मित पात्र एवं स्निग्ध स्थिर चित्त एवं बलवान भृत्य।
- जाम्बवौष्ठ- एक प्रकार का शस्त्र है जिसका अग्निकर्म एवं क्षार कर्म में प्रयोग होता है।
- शल्य कर्म में बलवान भृत्य की आवश्यकता होती है किन्तु कायचिकित्सा में नहीं।
- व्रण करने के लिए रोगी को हल्का भोजन करना चाहिए। रोगी को पूर्वाभिमुख बिठाकर तथा वैद्य को पश्चिम दिशा में मुख करना चाहिए।
- मर्म, सिरा, स्नायु, सन्धि, अस्थि एवं धमनियों का बचाव करते हुए लोम की दिशा में यानि अनुलोम शस्त्र चलाना चाहिए।
- पाक स्थानों के महान (बड़े) होने पर भी 2 अंगुल या 3 अंगुल तक ही लम्बा व्रण करना चाहिए।

- **व्रण के गुण** - 5 होते है

Copyrighted material

तत्रायतो विशालः समः सुविभक्तो निराश्रय इति व्रण गुणाः।

1. आयत
2. विशाल
3. सम
4. सुविभक्ता
5. निराश्रय

- श्रेष्ठ व्रण तथा वैद्य निर्मित व्रण का लक्षण -

  आयतश्च विशालश्च सुविभक्तों निराश्रयः।

  प्राप्तकालकृतश्चापि व्रणः कर्मणि शस्यते।।

  1. आयत
  2. विशाल
  3. सुविभक्त
  4. निराश्रय
- प्राप्तकाल कृत व्रण चिकित्सा कर्म में श्रेष्ठ माना गया है।
- शल्यचिकित्सक के गुण - (6 होते है)

  शौर्यमाशुक्रिया शस्त्रतैक्ष्ण्यमस्वेदऽवेपथु।

  असम्मोहश्च वैद्यस्य शस्त्र कर्मणि शस्यते।।

  - शूरता
  - आशु क्रिया
  - शस्त्र की धार का उचित तीक्ष्ण होना
  - शस्त्रकर्म करते समय चिकित्सक को पसीना न आना
  - हाथ का न कांपना
  - बड़े शस्त्र कर्म की दशा में मूर्छित न होना।
- जिस जिस स्थान पर दोष की गति तथा उभार प्रतीत हो उस-उस स्थान पर शस्त्र से व्रण करने चाहिए जिससे दोष भीतर न रह सकें।
- तिर्यक छेदन- (10 प्रकार)

1. भ्रू	6. ओष्ठ
2. गण्डस्थल	7. दन्तवेष्ट
3. शंखप्रदेश	8. कक्षा
4. ललाट	9. कुक्षि (उदर)
5. अक्षिपुट	10. वंक्षण

Copyrighted material

- अर्धचन्द्राकृति छेदन-

  अर्द्धचन्द्राकृतिश्चापि गुदे मेध्रे च बुद्धिमान

- चन्द्रमण्डलाकृति छेदन-

  चन्द्रमण्डलवच्छेदान पाणिपादेषु कारयेत्

- उचित विधि से छेदन न करने पर सिरा एवं स्नायु के छेदन की सम्भावना रहती है। पीड़ा अधिक होती है, चिरकाल से व्रण भरता है। मांस की गांठ उत्पन्न हो जाती है।
- निम्न मे बिना खिलाए शस्त्र कर्म करना चाहिए

  मूढगर्भअर्शाश्मरी भगन्दर मुखरोगेषु अभुक्तवत कर्म कुर्वीत||

1.मूढगर्भ	4. भगन्दर एवं
2.उदर रोग	5. मुखरोगों
3.अर्ष	6. अश्मरी

- सुश्रुत में ही चिकित्सास्थान में अर्श और भगन्दर में शस्त्रकर्म के पूर्व आहार देने को कहा है।
- शस्त्र कर्म के उपरान्त व्रण का कषाय से प्रक्षालन करते है पुनः कषाय जल को पोंछ कर तिलकल्क, शहद एवं घृत से लिप्त न अतिस्निग्ध और न अधिक रूक्ष संशोधन औषधि युक्त वर्ति व्रण स्थान में रखते हैं।
- तीसरे दिन व्रण बन्धन की पट्टी खोलने का निर्देश है। दूसरे दिन पट्टी खोलने पर उसे गांठे पड़कर देरी से रोहण होता है एवं वेदना तीव्र होती है।

हेमन्त	तीसरे दिन पट्ट खोलें
शिशिर	
बसन्त	
शरद	दूसरे दिन पट्ट खोलने का विधान है
ग्रीष्म	
वर्षा	

- सदोष व्रण पर रोपण क्रिया कभी नहीं करनी चाहिए।
- रोपण के बाद भी पूर्ण आरोग्यता न दिखने पर अजीर्ण, व्यायाम, स्त्रीसम्भोग, हर्ष, क्रोध और भय का वर्जन करना चाहिए।
- अष्टांग संग्रह में मैथुनादि का वर्जन 6 से 7 मास तक कहा गया है।

Copyrighted material

- किसी शस्त्र की चोट से अथवा शस्त्र क्रिया के इस व्रण में उत्पन्न हुई तीव्र वेदना जो कि शरीर को दुखित या सन्तप्त करती हो वह मुलेठी के चूर्ण से युक्त किंचित ऊष्ण घृत के द्वारा सेंचन करने से शान्त हो जाती है।
- आत्ययिक चिकित्सा का वर्णन इस अध्याय में (सर्वप्रथम) किया गया है |

Copyrighted material

सुश्रुत सूत्रस्थान - 6 - ऋतुचर्यमध्यायम्

- 'काल' ऐश्वर्यशाली एवं 'स्वयंभू' अर्थात् किसी से उत्पन्न नहीं है तथा आदि, अन्त, मध्य से रहित है।
- मधुरादि 6 रसों की विकृति एवं सम्पत्ति तथा प्राणियों का जीवन और मरण उस काल के अधीन है।
- वह काल अपनी सूक्ष्म कला तक भी नहीं ठहरता इसीलिए इसे 'काल' कहते हैं।
- प्राणियों का संकलन (दुख एवं सुख के साथ संयोग) करने से भी इसे काल कहते हैं।

"संकलयति इतिकालः"

- संवत्सर रूपी उस काल का भगवान सूर्य अपनी गति विशेष से निमेष, काष्ठा, कला, मुहूर्त, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर और युग इस तरह विभाग करते हैं।
- अकारादि लघु अक्षर के उच्चारण में जितना समय लगता है उसे 'अक्षिनिमेष' कहते हैं।

15 अक्षिनिमेष	- 1 काष्ठा
30 काष्ठा	- 1 कला
20 -1/10 कला	- 1 मुहुर्त
30 मुहूर्त	- अहोरात्र
15 अहोरात्र	- 1 पक्ष (शुक्ल या कृष्ण)
2 पक्ष	- 1 मास

- संवत्सर में 12 मास होते हैं, दो-दो मास की एक ऋतु होती है |
- **ऋतुएं (6) होती है**- शिशिर से प्रारंभ
  1. शिशिर
  2. बसन्त
  3. ग्रीष्म
  4. वर्षा
  5. शरद
  6. हेमन्त
- **माह एवं ऋतुओ का सम्बन्ध** -

तप (माघ) एवं तपस्य (फाल्गुन)	- शिशिर
मधु (चैत्र) एवं माधव (वैशाख)	- वसन्त
शुचि (ज्येष्ठ) एवं शुत्र (आषाढ़)	- ग्रीष्म

Copyrighted material

नभ (श्रावण) एवं नभस्य (भाद्रपद)	- वर्षा
ईष (अश्विन) एवं उर्ज (कार्तिक)	- शरद
सहा (मार्गशीर्ष) एवं सहस्य (पौष)	- हेमन्त

- **अयन** - (2)
    1. दक्षिणायण - वर्षा, शरद, हेमन्त
    2. उत्तरायण - शिशिर, बसन्त, ग्रीष्म
- दक्षिणायन में चन्द्रमा बलशाली होता है एवं अम्ल, लवण एवं मधुर रस प्रधान (बलवान) होता हैं। सभी प्राणियों का बल उत्तरोतर बढ़ता जाता है।
- उत्तरायण में सूर्य बलशाली होता है एवं तिक्त कषाय, कटुरस बलवान होते हैं। उत्तरोत्तर सभी प्राणियों का बल क्षीण होता है।
- दक्षिणायण को विसर्ग काल कहते हैं। उत्तरायण को आदानकाल कहते है।
- दक्षिणायण एवं उत्तरायण दोनों अयनों का मिलाकर एक वर्ष होता है। वे पांच वर्ष (संवत्सर) मिलकर एक युग बनाते हैं।
- निमेष से युग तक चक्र के समान परिवर्तनशील यह काल **कालचक्र** कहलाता है।
- पुनः दोषों के संचय, प्रकोप और प्रशमन निमित्त से 6 ऋतुए होती है-
- बसन्त, ग्रीष्म , वर्षा, शरद, हेमन्त, प्रावृट्

भाद्रपद एवं अश्विन	वर्षा
कार्तिक एवं मार्गशीर्ष	शरद
पोष एवं माघ	हेमन्त
फाल्गुन एवं चैत्र	बसन्त
वैशाख एवं ज्येष्ठ	ग्रीष्म
आषाढ़ एवं श्रावण	प्रावृट्

वर्षा ऋतु -

- वर्षा ऋतु में औषधियां - वर्षा ऋतु में औषधियां तरुण होने से अल्प वीर्य वाली होती है।
- आकाश के मेघाच्छन्न होने पर तथा पृथ्वी के वृष्टि जल से गीली होने पर क्लिन्न देह वाले तथा शीत (से कुपित) वात से विनष्ट पाचकाग्नि वाले प्राणियों के शरीर में उस दूषित जल तथा औषधि सेवन से विदाह रहने लगता है।
- विदाह से पित्त का संचय होता है।
- यह पित्त सूर्य की किरणों से विद्रुत होकर पैत्तिक व्याधियों को उत्पन्न करता है।

हेमन्त ऋत -

Copyrighted material

- हेमन्त ऋतु में जल भी प्रसन्न, स्निग्ध एवं अतिगुरू हो जाता है।
- सूर्य की किरणों के मन्द होने तथा तुषार (बर्फ) से मिली वायु के सम्पर्क द्वारा स्वम्भित देह वाले प्राणियों में प्रयुक्त की हुई वे औषधियां और जल मधुरपाकी होकर, स्नेह, शीतता, गुरुता और चिक्कणता के कारण कफ का संचय करती है।
- यह सन्चित कफ बसन्त ऋतु में सूर्य की किरणों से पिघलकर कुछ स्तब्ध हुई देह वाले प्राणियों में श्लेष्मिक रोग पैदा करना है।
- रजो धूमाकूला दिश :
- रोध्र प्रियंगु पुन्नाग के वृक्ष पुष्पित रहते है।

ग्रीष्म ऋतु-

- "निदाद्ये निस्सारा"
- औषधियां और जल इस ऋतु में साररहित, रुक्ष और अतिलघु हो जाती है।
- ये औषधियां एवं जल सूर्य की गर्मी से शुष्क देह वाले मनुष्यों में रुक्षता, लघुता एवं विषादता (निःस्नेहता) के कारण वायु का सन्चय करती है।
- यह वायु का संचय प्रावृट् ऋतु में भूमि के जल के द्वारा गीली होने पर क्लिन्न देह वाले प्राणियों में शीत, वात एवं वर्षा के कारण वातिक विकार को उत्पन्न करता है।
- वर्षा, हेमन्त, ग्रीष्म में सचिंत हुए तथा शरद, वसन्त और प्रावृट् ऋतु में कुपित हुए दोषों का निर्हरण करना चाहिए।
- **दोषों का शमन काल** -
    - पित्तजन्य रोगों का शमन - हेमन्त में
    - कफ जन्य रोगों का शमन - ग्रीष्म में
    - वातजन्य रोगों का शमन - शरद में स्वभाव से हो जाता है।
- **दिन और ऋतू में समानता** -
    - दिन के पूर्व भाग में - बसन्त ऋतु के लक्षण
    - मध्यान्ह में - ग्रीष्म ऋतु के लक्षण
    - सन्ध्या(प्रदोष) - वर्षा ऋतु के लक्षण
    - मध्यरात्रि - शरद ऋतु के लक्षण
    - सूयोदय (प्रत्यूष)से पूर्व - हेमन्त ऋतु के लक्षण
- ऋतुओं की व्यापत् (विकृति) अदृष्ट अर्थात अधर्म से होती है।
- विकृत औषधि एवं जल के सेवन से मरक होता है।

हेमन्त ऋतु-

- "रजोधूमाकुला दिशः"

Copyrighted material

- इस ऋतु में उत्तर दिशा की उल्टी वायु चलती है चारो दिशाएं धूलि एवं धुएं से व्याप्त रहती है।
- सूर्य तुषार (हिमपात) से आच्छादित रहता है, तडागादि जलाशय वर्फ से ढक जाते हैं।
- काक, गैडा, महिष, (ध्वांस, खडग, महिष), अरिभ्र (भेंडा), कुंजर (हस्ती) ये अपने मद से दर्पित रहते हैं।
- लोध्र, प्रियंगु एवं पुन्नाग (नागकेशर) के वृक्ष पुष्पित हो जाते हैं।
- जठराग्नि तीव्र (सबसे) रहती है

शिशिर ऋतु-

- शिशिरे शीते अधिकं वातवृष्टयाकुलादिशा
- शिशिर ऋतु में शीत अधिक होता है दिशाएं वायु एवं वर्षा से व्याकुल रहती हैं। शेष लक्षण हेमन्त जैसे होते है |

वसन्त ऋतु-

- मलयगिरि की दक्षिणी वायु चलती है।
- सब दिशाएं निर्मल, वन उपवनों से शोभायमान, पलाश, कमल, बकुल (मौलश्री), आम्र एवं अशोक इत्यादि वृक्षों के पुष्पों से शोभित तथा चारों ओर कोकिला तथा भ्रगरों के समूह के गुंजन से मनोहर, दक्षिण दिशा के वायु से व्याप्त, अनेक नये-नये भूरे-लाल कमल पल्लवों से शोभित होती है।

ग्रीष्म ऋतु -

- सूर्य तीक्ष्ण किरणों वाला होता है।
- नैरित्य दिशा की कष्टदायक पवन चलती है।
- पृथ्वी गर्मी से संतप्त रहती है।
- अल्प प्रवाह के कारण नदियां पतली हो जाती है।
- चारो दिशाएं प्रज्जवलित सी प्रतीत होती है।
- चक्राहयुगल (चकवा-चकवी) पानी की खोज में शान्त से घूमते रहते हैं।
- मृग जल पीने के लिए व्याकुल रहते हैं।
- छोटे वृक्ष, तृण एवं लताएं नष्ट हो जाती हैं, पेड़ों के पत्ते झड़ जाते हैं।

प्रावट् ऋतु-

- आकाशमण्डल पश्चिम दिशा की वायु से लाए हुए तथा बिजली की चमक के साथ कुछ बरसने वाले भंयकर गर्जन करने वाले मेघों से व्याप्त रहता है एवं
- पृथ्वी कोमल तथा श्याम रंग से व्याप्त शुक्रगोपों से उज्जवल तथा कदम्ब, दीप, कुटज की प्यास, केतकी से भूषित रहती है।

वर्षा ऋतु -

Copyrighted material

- नदियां प्रबल प्रवाह वाली होती है
- वाप्य (झीलें) अतिखिले (कुमुद) तथा (नील कमलों) से शोभायमान रहती है
- पृथ्वी घास से ढंकी रहती है
- सूर्य और नक्षत्र तथा आकाश छिपे हुए रहते है

शरद ऋतु -

- सूर्य पिग्ङलवर्ग का तथा कृष्ण वर्ण का हो जाता है
- आकाश श्वेत मेघों से निर्मल रहते है
- हंसो के चलने से उनके कंधों से घटित कमलों से सरोवर शोभायमान हो जाता है
- पृथ्वी शुष्क एवं द्रुम (बल्मीक) से व्याप्त हो जाता है
- रोग उत्पन्न होने से पूर्व ही दोषों का **निर्हरण काल** -
    - वसन्त ऋतु में वमनादि कर्म से कफ का हरण,
    - शरद में विरेचन द्वारा पित्त का हरण
    - वर्षा में स्नेह पान से, बस्ति से वात का शमन करना चाहिए।

Copyrighted material

सुश्रुत सूत्रस्थान - 7 -यन्त्रविधिमध्यायम्

- यन्त्रों की संख्या – 101 होती है | (वाग्भट के अनुसार - 116)
- प्रधानतम यन्त्र - हस्त
- प्रधान यन्त्र - कंकमुख यन्त्र
- यन्त्र की परिभाषा -

तत्र मनः शरीराबाधकराणि शल्यानि, तेषां आहरणोपायो यन्त्राणि।।

- **यन्त्रों के प्रकार** (आकृति भेद से) – 6 प्रकार

1.	स्वस्तिक यन्त्र -	24
2.	संदश यन्त्र -	02
3.	ताल यन्त्र -	02
4.	नाड़ी यन्त्र -	20
5.	शलाका यन्त्र -	28
6.	उपयन्त्र -	25

- अष्टांहृदय में निम्न अतिरिक्त यन्त्र बताया है -

संदश यन्त्र	- 4,
नाड़ी यन्त्र	- 26
शलाकायन्त्र	- 32
उपयन्त्र	- 29

- यन्त्र प्रायः लौह के बनाये जाते हैं। लौह के न मिलने पर उसके सदृश पदार्थों के भी बनाए जाते हैं।
- यन्त्रों के गुण - 6 होते है -

समाहितानि यन्त्राणि खरश्लक्ष्ण मुखानि च।
सुदृढानि सुरूपाणि सुग्रहाणि च कारयेत्।।

स्वस्तिक यन्त्र-

- 18 अंगुल प्रमाण लम्बे होते है
- सिंह, व्याघ्र, भेड़िया (वृक), तरक्षु (चरख), भालू (रीछ), द्वीपि (चीता), मार्जार (बिल्ली), श्रृगाल (गीदड़), मृग, एर्वारूक (मृग के समान पशु), काक, कंक (बगुला), कुकर, चास, भास, शशघाती (खरगोश को मारने वाला), उल्लू, चिल्ली, श्येन (बाज), गृध (गीध), कौंच, भृंगराज, अंजलिकर्ण, अवभंजन एवं नन्दिमुख इनके मुखों के समान मुख वाले

Copyrighted material

तथा मसूर के समान कील के सिरे पर मुड़े हुए एवं मूल भाग में अंकुश के समान मोड़े हुए पकड़ने के स्थान वाले होने चाहिए।

- स्वस्तिक यन्त्र जहां भी शल्य हो उसे निकालने के लिए प्रयुक्त होते हैं।

"अस्थिविदष्ट शल्याहरणार्थ"

संदंश यंत्र-

- **2 प्रकार के –**
  1- सनिग्रह
  2- अनिग्रह
- 16 अंगुल प्रमाण के होते है
- त्वक् मांस सिरा स्नायु शल्य के उद्धरणार्थ
- अष्टांग संग्रह कार ने इन दो के अतिरिक्त संदंश एवं अंगुल का पदमकोप

ताल यंत्र -

- 2 प्रकार के होते है
  1- एक ताल - मत्स्य के तालु के समान
  2- द्वि ताल
- 12 अंगुल प्रमाण वाले होते है
- उपयोग – कर्ण, नासा एवं नाड़ी के शल्यों को निकालने में होता है।

नाड़ी यन्त्र -

- स्रोतोगत शल्य को निकालने के लिए
- 4 कार्य -
  1. स्रोतोगत शल्योद्धरणार्थ
  2. क्रिया सौकयार्थ
  3. रोगदर्शनार्थ
  4. आचूषणार्थ
- नाड़ी यन्त्रों की मोटाई स्रोतो के समान तथा लम्बाई आवश्यकतानुसार होती है।

यन्त्र	संख्या	विशेष
1. भगन्दर नाड़ी यन्त्र	2	

Copyrighted material

2. अर्श नाड़ी यन्त्र	2	
3. व्रण नाड़ी यन्त्र	1	
4. बस्ति नाड़ी यन्त्र	4	
5. उत्तरबस्ति यन्त्र	2	(5 हाराण ने बताये है)
6. मूत्र वृद्धि यन्त्र	1	
7. दकोदर यन्त्र	1	
8. धूम यन्त्र	3	
9. निरूद्ध प्रकाश यन्त्र	1	
10. सन्निरूद्ध गुद यन्त्र	1	
11. अलाबू यन्त्र	1	
12. श्रृंग यन्त्र	1	

- डल्हण ने अपनी टीका में एक छिद्र तथा द्वि-छिद्र - ऐसे भगन्दर एवं अर्श यन्त्र के 2, 2 अतिरिक्त भेद माना है।

बस्ति यन्त्र - 6, 8, 10, 12 अंगुल लम्बे ऐसे चार अतिरिक्त यन्त्र होते है

धूम यन्त्र -

- वैरेचनिक
- स्नैहिक
- प्रायोगिक

- हाराणचन्द्रजी ने अपनी टीका में निम्न अतिरिक्त यन्त्र बताये है -

अर्शो यन्त्र	2	स्त्री एवं पुरूष के लिए अलग अलग
वस्तियंत्र	4	
उतरवस्तियंत्र	2	स्त्री के लिए
	2	पुरुष के लिए
	1	कन्या के लिए
धूमयंत्र	5	प्रायोगिक
		स्नैहिक
		वैरेचनिक
		कासघ्न
		व्रणधूपनार्थ

- वागभट्ट में सुश्रुतोक्त मूल के 12 अथवा टीकाकारों के 20 नाड़ी यन्त्रों के अतिरिक्त निम्न 6 अतिरिक्त माने है-
  1. कण्ठशल्यावलोकनी नाड़ी

Copyrighted material

2. शल्यनिर्घातनी
3. अंगुलित्राणक
4. शमीयन्त्र
5. घ्राणार्बुदार्शोयन्त्र
6. योनिव्रक्षेपणयन्त्र - 16 अंगुल लम्बा

शलाकायन्त्र-

- 28 अंगुल प्रमाण के होते है
- ये अनेक कार्यो में प्रयुक्त होते हैं तथा प्रयोजन के अनुसार मोटाई तथा लम्बाई वाले होते हैं।

नाम	संख्या	कर्म
गण्डूपदमुखी	2	एषण
सर्पफणमुखी	2	व्यूहन
शरपुंखमुखी	2	चालन
बडिशमुखी	2	आहरण
मसूरदलमुखी	2	स्रोतोगतशल्योद्धरणार्थ
कार्पासकृतोष्णीय	6	प्रमार्जन
खल्लमुखी	3	क्षारौषध प्रणिधान
जाम्बवदन	3	अग्निकर्म
अंकुशवदन	3	अग्निकर्म
कोलास्थिदलमुखी	1	नासार्बुद हरणार्थ
अंजनार्थ शलाका	1	कलाय के समान
मूत्रमार्गविशोधनी	1	मालतीपुष्प् वृन्त प्रमाण
कुल संख्या	28	

- वाग्भट्ट ने निम्न 5 शलाकाएं अतिरिक्त मानी हैं-
    1. गर्भशंकु
    2. सर्पफण
    3. शरपुंखमुखी शलाका
    4. कर्ण शोधन शलाका
    5. अर्धेन्द्र मुखी

उपयन्त्र- 25

Copyrighted material

1. रस्सी (रज्जु)	13. दन्त
2. वेणिका	14. नख
3. पट्ट	15. मुख
4. चर्म	16. बाल - अनुशस्त्र
5. अन्तरछाल	17. अष्वकष्टक
6. लता	18. वृक्ष की शाखा
7. वस्त्र	19. ष्ठीवन
8. अष्ठीला के आकार का पत्थर	20. प्रवाहण
9. मुदगर	21. हर्ष
10. पाणितल	22. अयस्कान्त
11. पादतल	23. क्षरि
12. अंगुलि - अनुशस्त्र	24. अग्नि-अनुशस्त्र
13. जिह्वा	25. भेषज

- अष्टांगसंग्रहकार ने आन्त्र, काल, पाक एवं भय ये 4 अतिरिक्त उपयन्त्र माने हैं

यन्त्रों के कार्य - 24

1. निर्घातन	13. आच्छन
2. पूरण	14. उन्नमन
3. बन्धन	15. विनमन
4. व्यूहन	16. भंजन
5. वर्तन	17. उन्मन्थ
6. चालन	18. आचूषण
7. विवर्तन	19. एषण - शस्त्रकर्म
8. विवरण	20. दारण
9. पीडन	21. ऋजुकरण
10. मार्गविशोधन	22. प्रक्षालन
11. विकर्षण	23. प्रधमन
12. आहरण - शस्त्रकर्म	24. प्रमार्जन

- शल्य को निकालने की दृष्टि से ककमुख यन्त्र को सर्वश्रेष्ठ माना गया है।
- **अंगुलि ,नख ,बाल, क्षार, अग्नि** सभी उपयंत्र व अनुशस्त्र दोनों में है

Copyrighted material

- आहरण व एषण - शस्त्रकर्म एवं यंत्रकर्म

यन्त्रों के दोष – 12 होते है -

1. अतिस्थूलम्	7.असारम्
2.अतिदीर्घम्	8.अग्राहि
3.विषमग्राहि	9.वक्रं
4.शिथिलम्	10.अत्युन्नतम्
5.मृदुकीलं	11.मृदुमुखं
6.मृदुपाशमिति	12.अतिह्रस्व

- वाग्भट्ट ने 8 यन्त्रदोष माने है –
  - दीर्घ, हस्व, स्थूल, तनु, वक्र, विषमग्राही, अग्राही, शिथिलता।
- उपरोक्त दोषो से विरहित एवं 18 अंगुल लम्बा यन्त्र प्रशस्त होता है।
- जो शल्य बाहर से दिखाई देता हो उसे सिंहमुखदियन्त्र एवं मांसादिधातुओं में गूढ़ शल्य को कंकमुखादि यन्त्रों से बाहर निकले।
- वाग्भट्ट ने उपयन्त्र को अनुयन्त्र कहा है।
- आहरण और एषण - यंत्र (24 कर्म) एवं शस्त्र (8 कार्य) दोनो के कार्य है।

Copyrighted material

शस्त्रों की संख्या- 23

1. मण्डलाग्र	11. शरारी मुख
2. करपत्र	12. अन्त्रतमुख
3. वृद्धिपत्र	13. त्रिकूर्चक
4. नखशस्त्र	14. कुठारिका
5. मुद्रिका	15. ब्रीहिमुख
6. उत्पलपत्र	16. आरा
7. अर्धधार	17. वेतसपत्र
8. सूची	18. वडिश
9. कुशपत्र	19. दन्तशंकु
10.आटी मुख	20. एषणी

- वाग्भट्ट ने इनके अतिरिक्त 6 और शस्त्रो का वर्णन किया है।
    1. सर्प मुख
    2. कूर्च
    3. रज्जू
    4. कर्तरी
    5. लिंगनाश शलाका
    6. कर्णव्यधन

- **शस्त्र कर्म -**

मण्डलाग्र एवं करपत्र	छेदन एवं लेखन कर्म
वृद्धिपत्र, नखशस्त्र, मुद्रिका, उत्पल पत्र एवं अर्धधार	छेदन एवं भेदन कर्म
सूची, कुशयन्त्र, आटीमुख, शरारी मुख एवं अंतरमुख, त्रिकूर्चक	विस्रावण
कुठारिका, ब्रीहिमुख, आरा, वेतस पत्र एवं सूची	वेधन कर्म
बडिश एवं दन्तशंकु	आहरण

Copyrighted material

एषणी	एषण व अनुलोमन
सूची	सीवन कर्म
त्रिकूर्चक	बालक वृद्ध कोमलांग, डरपोक, स्त्री, राजा, राजपुत्र के विस्रावण हेतु

- त्रिकूर्चक का प्रयोग बालक वृद्ध कोमलांग, डरपोक, स्त्री, राजा, राजपुत्र के विस्रावण हेतु किया जात है |
- **शस्त्रों के प्रमाण-**

शस्त्र	प्रमाण
नखशस्त्र एवं एषणी	8 - 8 अंगुल
मुद्रिका	प्रादेशिनी (तर्जनी) अंगुली के अग्रिम पर्व के बराबर
शरारी मुख (कर्तरी)	10 अंगुल
सूची	2-3 अंगुल
शेष अन्य शस्त्र	6 अंगुल

- शस्त्रों के गुण- (शस्त्र सम्पत) - 6
  - सुग्रहणि
  - सुलोहानि
  - सुधाराणि
  - सुरूपाणि
  - सुसमाहितमुखाग्र
  - अकरालानि (दन्तरहित)
- शस्त्रों के दोष- 8
  - वक्र
  - कुण्ठ
  - खण्ड
  - खरधार
  - अतिस्थूल
  - अतितुच्छ
  - अतिदीर्घ
  - अतिहस्व
- करपत्र 'खरधार' वाला ही उपयुक्त होता है।

Copyrighted material

- शस्त्रों की धार
    - भेदन कर्म करने वाले शस्त्रों की धार - मसूर के समान
    - लेखन कर्म में प्रयुक्त शस्त्रों की धार - अर्धमासुरी
    - वेधन एवं विस्रावण कर्म करने वाले - कैशिकी
    - छेदन कर्म विस्रावण कर्म करने वाले - अर्धकैशिकी
- बडिश एवं दन्त शंकु ये दोनों शस्त्र अग्रभाग पर मुड़ें हुए होते हैं।
- ऐषणी 3 प्रकार -
    - 1.तीखे कांटे के समान मुख वाली
    - 2.यव के नवीन उत्पन्न पत्र के समान मुख वाली
    - 3.केंचुए के समान आकार एवं मुख वाली
- चरक ने एषणी 2 प्रकार बतायी है - मृदु व कठिन
- पायना - शस्त्रों को तेज करने के लिए इन्हें गर्म कर क्षार, जल एवं तैल में डुबोते हैं, इस क्रिया को 'पायना' कहते हैं।
- पायना के 3 प्रकार -
    - क्षार-शर (बाण) के शल्य को निकालने तथा अस्थिछेदन में प्रयुक्त होता है।
    - उदक- मांस के छेदन, भेदन एवं पाटन कर्म में प्रयुक्त होता है
    - तैल-सिराओं के बेधन कर्म तथा स्नायुच्छेदन कर्म में प्रयुक्त होता ह
- शस्त्रों की धारा को तेज करने के लिए उड़द के रंग की खुरदुरी शिला होती है -निशातनी

माषवर्णा श्लक्ष्णशिला निशानार्थ

- धार को स्थिर रखने हेतु के लिए शाल्मली के वृक्ष का फलक उपयोग में आता है।

शाल्मलीफलक धारा संस्थापनार्थ

- अ.सं. में वागभट्ट ने शस्त्रों को सुरक्षित रखने के लिए **'शस्त्र कोष'** का वर्णन किया है। जिसका प्रमाण (12 अंगुल लम्बा एवं 9 अंगुल चौड़ा) बताया है |
- **अनुशस्त्र- 14 (वागभट्ट- 17)-**

1. बांस की छाल	8. नख
2. स्फटिक	9. गोजी (गाजवा)
3. कांच	10. शेफालिका पत्र (हरसिंगार)
4. कुरूविन्द	11. शाकपत्र
5. श्रेष्ठ	12. करीर
6. अग्नि	13. बाल
7. क्षार	14. अंगुलिया

Copyrighted material

- बालकों एवं शस्त्रों से डरने वाले पुरुषों के लिए और जब शस्त्र न हो तो छेदन और भेदन कर्म करने के लिए अनुशस्त्र का प्रयोग करें।
- आहरण, छेदन, भेदन तथा अन्य शक्य (करने योग्य) शस्त्र कर्म को करने के लिए 'नख' का प्रयोग करें।
- मुखरोग तथा वर्त्मगत रोगों का विस्रावण गोजी, शेफालिका एवं शाकपत्र से करना चाहिए।
- एष्य कर्म में एषणी के अभाव में बाल अंगुलियों और अंकुरो का उपयोग करना चाहिए।
- अष्टांग संग्रह में उक्त 14 अनुशस्त्रों के अतिरिक्त 3 अधिक बताया है = कुल 17
    - 1. सूर्यकान्त - त्वगदाह
    - 2. समुद्रफेन - लेखन
    - 3. शुष्कगोमय - प्रछन्न
- बालक, वृद्ध, कोमलांग, डरपोक, स्त्रियों, राजा एवं राजपुत्र के विस्रारण कर्म त्रिकूर्चक से करते हैं।

Copyrighted material

सुश्रुत सूत्रस्थान - १ - योग्यासूत्रीय अध्याय

- योग्या = प्रत्यक्ष कर्माभ्यास =
- योग्या अथवा प्रत्यक्ष कर्माभ्यास के लिए निम्न वस्तुओ का प्रयोग करते है -

छेदन	पुष्पफल, अलाबू , कालिन्दक, त्रपुस, एर्वारू (ककड़ी), कर्कारूक
भेदन	दृति (मशक), बस्ति एवं प्रसेवक आदि को जल एवं कीचड़ से भरकर
लेखन	विस्तृत एवं बालदार चर्म पर
वेधन	मृत पशुओं को सिराओं एवं कमलनाल पर
एषण	घुण लगने से नष्ट हुए काष्ठ, बांस, कमल नाल तथा सूखे हुए तुम्बी के मुखों में
आहरण	पनस (कटहल), बिम्बीफल, विल्वफल की मज्जा तथा मृत पशुओं के दांत पर
विस्रावण	मोम (मधूच्छिष्ट) से लिपटे हुए शाल्मली के फलक पर
सीवन	पतले तथा मोटे दो वस्त्रों के प्रान्त भागों तथा कोमल चमड़े के प्रान्त भागों पर
बन्धन	वस्त्र अथवा मृतिका से बनाये हुए पुतलों के अंगप्रत्यगों पर
अग्नि व क्षार कर्म	मुलायम मांसखण्डों पर
कर्ण सन्धिबन्धन	मुलायम चर्म, मांसपोशियों एंव कमल नालों पर
बस्तिनेत्र, वस्तिकर्म एवं व्रण वस्ति कर्म	जल से भरे घड़े पर पाश्र्वछिद्र में तथा तुम्बी के मुखादि में

- कमलनाल पर - वेधन, एषण व कर्णसन्धिबन्धन कर्म

Copyrighted material

सुश्रुत सूत्रस्थान - 10 - विशिखाऽनुप्रवेशनीय

- विशिखा = स्वकर्म मार्ग व रोगी के गृह जाने का मार्ग
- रोगों को जानने के 6 उपाय है -

  षड्विधो हि रोगाणां विज्ञानोपाय
- षडविध परीक्षा-
  - 1.श्रोत
  - 2.नेत्र
  - 3.नासिका
  - 4.जिहवा
  - 5.त्वचा
  - 6.प्रश्न
- साध्य रोगों की चिकित्सा का आदेश है। साध्य रोगों की 'भेषज' द्वारा निवारित करें। असाध्य रोगों की चिकित्सा न करें।
- एक वर्ष से पुराने रोगों की प्रायः चिकित्सा नहीं करनी चाहिए क्योंकि वे भी करीब-करीब असाध्य से होते हैं।
- निम्न व्यक्तियों की साध्य व्याधियां भी दुश्चिकित्स्य होती है।

1. वेदपाटी
2. स्त्री
3. वृद्ध
4. राजभृत्य
5. दुर्बल
6. व्याधि छिपाने वाला
7. कंजूस
8. अपत्य्य सेवी
9. राजा
10. बाल
11. भीरू
12. द्यूतकार
13. वैद्याभिमानी
14. दरिद्री
15. क्रोधी

- स्त्री के साथ एक आसन पर बैठना, बाते करना वर्जित है।
- अन्तराग्नि (पाचकाग्नि) की परीक्षा प्रश्न द्वारा करते है। (चरक ने जरणशक्ति से कहा है)

Copyrighted material

सुश्रुत सूत्रस्थान - 11 - क्षारपाक विधि

- शस्त्रों तथा अनुशस्त्रों से क्षार अधिक प्रधान माना गया है क्योंकि यह
  1. छेदन, भेदन एवं लेखन इन शस्त्र कर्मो को करने से
  2. अनेक औषधियों द्वारा बना होने से
  3. त्रिदोषनाशक होने से तथा
  4. विशेष क्रियाओं में इसका अवचारण होने से श्रेष्ठ है।
- क्षार त्रिदोषघ्न एवं सौम्य होकर भी दहन, पचन, दारण करता है। आग्नेय होकर भी अर्श में हितकारी है। क्षरण या क्षरण होकर भी पेय कार्य में प्रयुक्त होता है।

  तत्र क्षरणात् क्षणनाद्वा क्षारः।
- दूषित मांस आदि का क्षरण करने से अथवा त्वचा मांसादि का क्षणन (हिंसन) करने से 'क्षार' कहलाता है।
- **क्षार के गुण -**
  - क्षार वर्ण में श्वेत होने से सौम्य है,
  - आग्नेय औषधियों द्वारा बनने से रस में कटु
  - वीर्य में ऊष्ण
  - गुण में तीक्ष्ण व्रणशोथ आदि का पाचक
  - गुल्मादि का विलायक
  - दुष्ट व्रणों का शोधक
  - शुद्ध व्रणों का रोपक
  - व्रणों की क्लिन्नता का शोषक
  - रक्तातिस्राव का स्तम्भक
  - कठिन्नोत्त मांसादि का लेखक
  - कृमि, आमदोष, कफ, कुष्ठ, विष और मेदो वृद्धि का नाशक
  - अधिक मात्रा में सेवन से पुंसत्व नाशक है।
- क्षार के प्रकार -
  1. प्रतिसारणीय
  2. पानीय
- अष्टांग संग्रह में वाह्य परिमार्जन एवं अंतःपरिमार्जन नाम से क्षार के दो भेद माने है।

Copyrighted material

- **प्रतिसारणीय क्षार का प्रयोग** -

1.कुष्ठ	10.चर्मकील
2.किटिभ	11.नाड़ी
3.द्रदु	12.तिलकालक
4.मण्डल	13.न्यच्छ
5.किलास	14.व्यंग
6.भगन्दर	15.मशक
7.अर्बुद	16.वाह्यविद्रधि
8.अर्श	17.कृमि
9.दुष्टव्रण	18.विष

- निम्न सात प्रकार के मुख रोगों में प्रतिसारणीय क्षार का प्रयोग होता है-
  - 1.उपजिहवा
  - 2.अधिजिहवा
  - 3.उपकुश
  - 4.दन्तवैदर्भ
  - 5, 6, 7 रोहिणी के 3 भेद
- **पानीय क्षार का प्रयोग** -

1. गरविष	8.गुल्म
2. उदररोग	9.अग्निसंग
3. अजीर्ण	10.अरोचक
4. आनाह	11.शर्करा
5. अश्मरी	12.आभ्यान्तर विद्रधि
6. कृमि	13.विष

- **निम्न रोगों में पानीय क्षार अहितकारी है**-

1.रक्तपित्त
2.ज्वर
3.पित्तप्रकृति
4.बालक
5.वृद्ध
7.भ्रम
8.मद
9.मूर्च्छा
10.तिमिर

Copyrighted material

6.दुर्बल

- प्रतिसारणीय क्षार 3 प्रकार का होता है-
    1. मृदु - संव्यूहिम
    2. मध्य
    3. तीक्ष्ण - पाक्य
- क्षार का निर्माण शरद ऋतु में करना चाहिए।
- मध्य आयु के, बहुत बड़े, काले पुष्प् वाले मुष्क को प्रथम दिन मन्त्रादि से आमंत्रित करके द्वितीय दिन उखाड़कर उसे टुकड़े-टुकड़े करके वायु रहित स्थान में इकट्ठा करके उसके ऊपर चूने के छोटे-छोटे टुकड़े डालकर तिलनाल से अग्नि प्रदीप्त कर देना चाहिए। अग्नि के स्वांगशीत होने पर मुस्क की भस्म इक्कट्ठी कर लें।
- भस्म एक द्रोण एवं पानी 6 द्रोण लेकर उसमे आडोलित करते हैं।
- यदि क्षार तीक्ष्ण बनाना हो तो पानी के स्थान पर गोमूत्र लेते हैं। उसमें घोलकर 21 बार छानते हैं।
- पाक के बाद - निर्मल
    - लालवर्ण का
    - तीक्ष्ण
    - पिच्छिल क्षार पक्व माना जाता है।
- इसमें से एक/डेढ़ कुडब निकाल लेते है
- वागभट्ट ने जल एवं मूत्र दोनों को समान भाग में मिश्रित कर क्षार पकाने को कहा है।
- क्षार द्रोण - मुस्क की राख 2 भाग एवं
    कुटजादि द्रव्यों की राख 1 भाग
- कटशर्करा (चूना), भस्म शर्करा, क्षीर पाक (जल शुक्ति) एवं शंख की नाभि इन्हे आग में अग्नि में अग्नि के समान लाल सुर्ख करके क्षारोदक में बुझाकर तथा उसी क्षारोदक से पीस कर दो द्रोण शेष क्षारोदक के लिए 8 पल शंखनाभि आदि का प्रमाण प्रक्षिप्त कर पकाते हैं। उपरोक्त 'मध्य क्षार' का विधान है।
- यदि 8 पल शंखनाभि का 'प्रतिवाप' न डालें तो इसे मृदुक्षार कहते हैं उसे संव्यूहिम भी कहते हैं।
- यदि उक्त कटशर्करादि द्रव्यों के 'प्रतिवाप' में दन्ती, द्रवन्ती, चित्रक, लांगली (कलिहारी), पूतिक, ताडपत्री (मूसली), विडलवण, सुवर्चिका (सर्जिक्षार), कनकक्षीरी (सत्यानाशी), हिंगु, वचा एवं अतीस इन्हें समान प्रमाण में महीन चूर्ण करके, कटशर्करा शुक्तिप्रमाण में (2 गोला) आदि द्रव्यों के साथ उक्त द्रव्यों का प्रतिवाप देकर जो पकाया जाता है उसे तीक्ष्ण क्षार कहते है। इसका नाम पाक्य है।
- **क्षार के गुण** - 8

Copyrighted material

नैवातितीक्ष्णो न मृदुः शुक्लः श्लक्ष्णोऽथ पिच्छिलः।

अविष्यन्दी शिवं शीघ्र क्षारो अष्टगुणः स्मृतः।।

न अतितीक्ष्ण	अविष्यन्दी
न अति मृदु	शिव (सौम्य)
शुक्ल	शीघ्रकारी
श्लक्ष्ण	पिच्छिल

- चरकानुसार क्षार के गुण - 10
  तीक्ष्ण, उष्ण, लघु, रूक्ष, क्लेदी, पाकी, विदारण, दाहन, दीपन, अग्निसन्निभं
- अ0संग्रह – क्षार के 10 गुण
- क्षार के दोष- 9 (वागभट्ट ने 10 दोष बताया है)

अतिमार्दवश्वैत्यौष्णयतैक्ष्ण्य पैच्छिल्य सर्पिताः।

सान्द्रताऽपक्वता हीन द्रव्यता दोष उच्यते।।

1.अति मृदु	2.अधिक फैलने वाला
3.अति श्वेत	4.अति सान्द्र
5.अति ऊष्ण	6.अपक्व
7.अति तीक्ष्ण	8.हीन द्रव्यता
9.अति पिच्छिल	

- **क्षार की तीक्ष्णता की परीक्षा -**
  - 100 तक गिनती करने तक एरण्डमाल को जलाने वाला - तीक्ष्णक्षार
  - 100 तक गिनती के पूर्व ही एरण्डमाल को जलाने वाला - अतितीक्ष्ण
  - 100 तक गिनती के बाद एरण्डमाल को जलाने वाला - अतिमृदु
- **क्षार का प्रयोग कैसे -**
  - वातदुष्ट स्थान पर लेखन,
  - पित्त दुष्ट स्थान पर घर्षण,
  - कफ दुष्ट पर प्रच्छान करके शलाकायन्त्र से क्षार का अवचारण करना चाहिए।
- **क्षारदग्ध**- क्षार के प्रयोग से व्याधि के दूर होने पर उस स्थान का कृष्ण हो जाना क्षार दग्ध का लक्षण है।

Copyrighted material

- उस स्थान पर सौवीरक, तुषोदक, धान्याम्ल (कांजी) आदि अम्ल वर्ग के द्रव्यों में घृत और मुलेठी का चूर्ण मिलाकर लगाने से दाह, पीड़ा आदि दुःख शान्त हो जाते है।
- अम्ल कांजी के बीज अर्थात उसके तल भाग में अवक्षिप्त किण्व द्रव्य, तिल और मुलेठी इन्हे समान प्रमाण में लेकर पीस कर क्षारदग्ध स्थान पर लेप करें। इससे क्षारदग्ध भाग विशीर्ण हो जाता है वह व्रण बन जाता है उस व्रण पर तिलों का कल्क एवं मुलेठी चूर्ण को घृत के साथ लगाने से व्रण का रोपण हो जाता है।
- क्षार में अम्ल रस के अतिरिक्त सभी रस विद्यमान रहते हैं। कटुरस प्रधान होता है एवं लवण रस अप्रधान होता है।
- डल्हण ने 'कटुस्तत्र' से लवण रस को प्रधान एवं कटु रस को अप्रधान बताया है।
- अष्टांग संग्रह में भी 'कटुरस' का ही प्रथम निर्देश है।
- सम्यग दग्ध होने पर -

  सम्पकदग्धे विकारोपशमोलाघवमनास्त्रावश्च
  - 1.रोग का शमन
  - 2.अंग में लघुता
  - 3.स्राव का बहना बन्द हो जाता है।
- हीन दग्ध होने पर -

  "तोद कण्डू जाड़यानि व्याधिवृद्धिश्च"
  - रूग्ण स्थान पर सूई की चुभन जैसी पीड़ा
  - खुजली
  - स्थान की जड़ता
  - व्याधि वृद्धि
- अतिदग्ध होने पर -
  - दाह, पाक, लालिमा, पूय का स्राव
  - अंगमर्द, ग्लानि, प्यास, मूच्र्छा
  - मरण

- निम्न रोगियों में क्षार कर्म नहीं करना चाहिए-

दुर्बल	गर्भिणी
बालक	रजस्वला स्त्री

Copyrighted material

वृद्ध	ज्वर वेग बढ़ा हुआ
भीरू	प्रमेह
सर्वांगशोथ	उरःक्षत से क्षीण
उदर रोगी	तृष्णा से पीड़ित
मूर्छा से पीड़ित	नपुंसक

- जिस स्त्री का गर्भाशय उपर या नीचे को भ्रंश हो गया हो (फलयोनि)
- वाग्भट्ट ने अतिसार, शिरोरोग, पाण्डुरोग में तथा वमन एवं विरेचन कर्म किए हुए में क्षार प्रयोग निषिद्ध माना है।
- निम्नोक्त में भी क्षार कर्म नहीं करना चाहिए।

मर्मस्थान	गला
सिरा	नाभि
संधि	नख
तरूणास्थि	शिश्न के भीतर
सीवनी	स्रोतस
सीवनी	अल्प मांस वाले
धमनी	नेत्र रोग (वर्त्मगत रोगों को छोड़कर)

Copyrighted material

- दहन में क्षार की अपेक्षा अग्नि उत्तम मानी गयी है क्योंकि -
  - अग्नि से जले हुए रोगों की पुनः उत्पत्ति नहीं होती है।
  - जो रोग क्षार, औषध, शस्त्र के प्रयोग से ठीक नहीं होते वे अग्नि कर्म से ठीक हो जाते हैं।
- अग्नि द्वारा दहन करने के लिए निम्न उपकरण कार्य में प्रयुक्त होते हैं-

उपकरण	कार्य
पीपल	त्वचा के दग्ध में प्रयुक्त
अजाशकृद्	
गाय या बैल का दन्त	
शर	
शलाका	
जाम्बवौष्ठ	मांसगत रोगों के दहन
सोना, चांदी, ताम्र आदि लौह	
शहद, गुड़, घृतादि स्नेह पदार्थ	सिरा, स्नायु संधि एवं अस्थिगत रोगों के दहन में प्रयुक्त

- वाग्भट्ट ने पिचुवर्ति, सूर्यकान्त एवं लोम को भी दहनोपकरणों में माना है।
- शरद एवं ग्रीष्म ऋतु में दहन कर्म नहीं करना चाहिए। उन ऋतुओं में आत्ययिक काल में ही ऋतुविपरीत आहार विहार का प्रबन्ध कर अग्निकर्म करना चाहिए।
- निम्न रोगों को छोड़कर सभी रोगों में तथा सभी ऋतुओं में पिच्छिल अन्न को खिलाकर अग्निकर्म करना चाहिए।
  - मूढगर्भ
  - अश्मरी
  - भगन्दर
  - उदर रोग
  - अर्श
  - मुख रोग
- कुछ आचार्य के अनुसार दो प्रकार के अग्निकर्म होते है -
  1. त्वक दग्ध
  2. मांस दग्ध
- परन्तु धन्वन्तरि सम्प्रदाय में सिरा, सन्धि एवं अस्थियों में भी अग्निकर्म का निषेध नहीं है।

Copyrighted material

- **त्वक्दग्ध के लक्षण**-
    - चड् - चड् शब्द होना
    - दुर्गन्ध आना
    - त्वचा में संकोच
- **मांसदग्ध के लक्षण** -
    - कपोत के समान वर्ण होना – "कपोतवर्णता"
    - शोथ एवं वेदना कम होना
    - सूखे तथा संकुचित व्रणों का होना – "शुष्क संकुचित व्रणता"
- **सिरा स्नायु दग्ध के लक्षण** -
    - व्रण में कालापन – "कृष्णान्नतव्रणता"
    - उभार
    - स्राव का न निकलना - "स्रावसंनिरोधश्च"
- **सन्धि एवं अस्थि दग्ध के लक्षण** -
    - रूक्षता
    - लालिमा
    - कर्कशता
    - कठिनता
- अष्टांग संग्रह में 'लाक्षारस' का प्रयोग पक्ष्म के बालों में निशान लगाने को किया है।
- त्वचा, मांस, सिरा, स्नायु, संधि तथा अस्थि में होने वाली वायु की तीव्र पीड़ा में तथा जिस व्रण में मांस उभर आये और कठोर एवं सुप्त हो जाय उसमें अग्नि कर्म करना चाहिए।
- ग्रन्थि, अर्श, अर्बुद, भगन्दर, अपची, श्लीपद, चर्मकील, तिलकालक, आन्त्रवृद्धि, सन्धि के रोग तथा सिराओं के कट जाने पर और नाड़ी व्रण तथा रक्त के अधिक होने पर अग्निकर्म करना चाहिए।
- दहन के प्रकार- 4
    1. वलय
    2. बिन्दु
    3. रेखा (विलेखा)
    4. प्रतिसारण
- अष्टांग संग्रहकार ने – 7 प्रकार माना है (ऊपर के चार और निचे के तीन)
    1. अर्धचन्द्र
    2. स्वस्तिक
    3. अष्टापद तीन अधिक प्रकार बताए हैं।

Copyrighted material

- निम्न मनुष्यों में अग्निकर्म नहीं करना चाहिए-
    - पित्त प्रकृति
    - रक्तपित्त से पीड़ित (अन्तःशोणित)
    - अतिसार
    - जिसका शल्य न निकला हो
    - दुर्बल
    - भिन्न कोष्ठी (अतिसारी)
    - बालक
    - वृद्ध
    - भीरू
    - अनेक व्रणों से पीड़ित
    - अस्वेद्य (जिसको स्वेदन कर्म वर्जित हो) –
- चरकानुसार नेत्ररोग एवं कुष्ठ में भी अग्निकर्म वर्जित है।
- इतरथा दग्ध - स्निग्ध एवं रुक्षदग्ध
- अग्नि से सन्तप्त हुआ पदार्थ छोटी-छोटी सिराओं में प्रवेश करने की क्षमता रखने से त्वचादि में प्रविष्ट होकर शीघ्र जला देता है। इसीलिए 'स्नेहदग्ध' में अधिक वेदना होती है।
- वागभट्ट ने 'इतरथा दग्ध' को 'प्रमाददग्ध' कहा है।
- अग्नि दग्ध के चार भेद-
    1. प्लुष्ट
    2. दुर्दग्ध
    3. सम्यग्दग्ध
    4. अतिदग्ध
- **प्लुष्ट** - जहां अतिमात्रा में त्वचा का रंग विकृत हो जाय उसे प्लुष्ट कहते हैं। प्लुष्ट को वागभट्ट ने तुत्थ कहा है।
- **दुर्दग्ध** - जहां दग्ध से स्फोट, चोष, दाह, राग, पाक एवं वेदना हो उसे दुर्दग्ध कहते हैं।
- **सम्यग्दग्ध** - जहां व्रण नीचा न हो, ताड़ के फल के समान वर्ण, सुसंस्थित (समान) तथा पूर्वोक्त त्वचा, मांस, सिरा के दाह लक्षणों से युक्त हो उसे 'सम्यग्दग्ध' कहते हैं।
- **अतिदग्ध** - में जले मांस के टुकड़े लटकते दिखाई देते हैं, शरीर के अंगों या संधियों का विश्लेष हो जाता है, सिरा स्नायु, संधि अस्थि का अधिक मात्रा में विनाश हो जाता है तथा ज्वर, दाह, विपासा और मूर्च्छा ये उपद्रव उपन्न हो जाते हैं। इसका व्रण देरी से भरता है तथा रोपित हो जाने पर भी विरूप सा हो जाता है।

Copyrighted material

- अग्नि से कुपित मनुष्य का रक्त अधिक दुष्ट हो जाता है उसके पश्चात उसी वेग से उसका पित्त भी कुपित हो जाता है, तीव्र वेदना होती है स्वाभाविक दाह होता है, शरीर पर स्फोट हो जाता है वह व्यक्ति ज्वर और पिपासा से पीड़ित होता है।
- प्लुष्ट में जले भागों को अग्नि से तपाना चाहिए तथा वाह्य लेपादि और आभ्यान्तरीय (पानादि) औषधियां भी ऊष्ण गुण वाली प्रयुक्त करनी चाहिए -हेतु विपरीतार्थकारी चि0
- व्रणों के प्रच्छालन एवं पीने के लिए ऊष्ण जल का प्रयोग करना चाहिए। शीतल जल का प्रयोग वर्जित।
- दुर्दग्ध में शीत तथा ऊष्ण दोनो प्रकार के उपचार करना चाहिए परन्तु घृत, आलेप एवं सेक का उपयोग शीतल रूप में ही करें।
- सम्यग्दग्ध में वंशलोचन, प्लक्ष की छाल, लाल चन्दन, सोना गेरू एवं गुडूची को पत्थर पर महीन पीस कर प्रलेप करना चाहिए। या घोड़े आदि ग्राम्य पशु, वाराह आदि आनूप पशु तथा कच्छपादिक आनूप प्राणियों के मांस को पीसकर प्रलेप करना चाहिए।
- यदि दग्ध स्थान पर या सर्वदेह में निरन्तर दाह होता हो तो पित्तविद्रधि के समान चिकित्सा करनी चाहिए।
- अतिदग्ध की अवस्था में जले मांस को निकालकर प्रथम शीतल उपचार करना चाहिए पश्चात शालि चावल का चूर्ण अथवा तिन्दुक की छाल के क्वाथ में घृत मिलाकर प्रलेप और व्रण को गुडूची के पत्रों अथवा कमल के पत्रों से आच्छादित कर देना चाहिए। अन्य क्रिया पित्तविसर्प की तरह करनी चाहिए।
- सर्वप्रकार के अग्निदग्ध में रोपक घृत- मोम, मुलेठी, लोध्र, राल, मंजिष्ठा एवं मूर्वा को जल से पीसकर कल्क डालकर घृतावशेष पाक करते हैं।
- तैल, घृत आदि स्नेहो से दग्ध होने पर विशेष कर रूक्ष क्रियाएं करनी चाहिए।
- **धूमोहत के लक्षण-**
    - श्वास में कठिनाई
    - बार-बार छीकों का आना
    - कास
    - चक्षु में दाह
    - लालिमा
    - श्वास क्रिया में धूम
    - श्वास में धूम की गन्ध
    - धूम के अतिरिक्त गन्ध ज्ञान का नष्ट होना
    - रसों को पहचानने का ज्ञान नष्ट
    - श्रवण शक्ति नष्ट
    - प्यास, दाह और ज्वर से पीड़ित होकर दुर्बल रोगी

Copyrighted material

- मूर्च्छा

- **धूमोपहत चिकित्सा** -
  - सर्वप्रथम 'धूमोपहत' रोगी को वमन कराने के लिए घृत, इक्षुरस, द्राक्षा, पय (दूध), शर्कराम्बु या मधुर एवं अम्ल का रस पिलाकर वमन कराना चाहिए।
  - मधुर, अम्ल, लवण और कटुरस प्रधान द्रव्यों के स्वरस या क्वाथ द्वारा कवलग्रह कराना चाहिए।
  - वमन के पश्चात शिरोविरेचन।
  - ऊष्णवायु एवं तेज धूप से दग्ध होने पर सदा शीतोपचार करना चाहिए।
  - शीतदग्ध में स्निग्ध एवं ऊष्ण उपचार।
  - अतितेज (इन्द्रव्रज एवं विद्युत्पात) से दग्ध को सिद्धि नहीं होती।
  - इन्द्रव्रजादि दग्ध यदि जीवित हो तो स्नेह अभ्यंग, परिषेक और प्रदेह से प्रतिकार का विधान है।
- **अग्निकर्म में विचार** -
  - रोग के संस्थान रूप का
  - रोगी के मर्म स्थान का
  - रोगी के बलाबल
  - व्याधि का काल
  - ऋतु के काल का
- सम्यक दग्ध में भी यदि दग्ध स्थान पर दाह हो तो पित्तज विद्रधि के समान चि0 करनी चाहिए
- अतिदग्ध में पित्तज विसर्प के समान चि0 करनी चाहिए।

Copyrighted material

सुश्रुत सूत्रस्थान - 13 - जलौकावचारणीय

- जलौकावचारण योग्य व्यक्ति-
    - राजा, आढ्य (धनवान), बालक, वृद्ध भीरू,
    - दुर्बल, स्त्री तथा कोमल शरीर वाले।
- वात से दूषित रक्त को **श्रृंग** से निकालना चाहिए।18 अंगुल प्रमाण वाली
- पित्त से दूषित रक्त को **जलौका** से निकालना चाहिए।12 अंगुल प्रमाण वाली
- कफ से दूषित रक्त को **अलाबू** से निकालना चाहिए।12 अंगुल प्रमाण वाली
- सबका सर्व दोषों में उपयोग कर सकते हैं।
- श्रृंग-स्निग्ध, जलौका-शीत एवं अलाबू - रूक्ष होती है।
- गोश्रृंग - - ऊष्णवीर्य
  - मधुररस
  - स्निग्ध
  - वातदुष्ट रक्तावसेचन के लिए
- जलौका - - शीत
  - जल से उत्पन्न
  - मधुर रस
  - पित्त दुष्ट रक्तावसेचन के लिए
- अलाबू - - कटुरस
  - रूक्ष
  - तीक्ष्ण
  - कफ दुष्ट रक्तावसेचन के लिए
- **जलौका वर्णन -**

  जलमाससाययुरिति जलायुकाः, जल मासामोक इति जलौकसः।
- जल ही जिनका जीवन है उन्हें "जलायुका" कहते हैं अथवा जल ही जिसका निवास स्थान है उन्हें 'जलौका' कहते हैं।
- जलौकाएं 12 प्रकार की होती है-
    - सविष - 6
    - निर्विष - 6
- **विषयुक्त जलौका** -
    - कृष्णा
    - कर्बुरा
    - अलगर्दा

Copyrighted material

- इन्द्रायुधा
- सामुद्रिका
- गोचन्दना

कृष्णा	अंजन के चूर्ण के समान काले वर्ण वाली, बड़े शिरवाली
कर्बुरा	वर्मी मछली की तरह लम्बी तथा उदर पर उभरी रेखाओं वाले
अलगदा	शरीर पर रोमवाली, महापार्श्वा एवं काले मुख वाली
इन्द्रायुधा	इन्द्र के धनुष के रंग की तरह चित्र विचित्र रेखाओं से युक्त
सामुद्रिका	काली-पीली बिन्दुओं से युक्त अनेक प्रकार की पुष्पाकृति से चित्रित
गोचन्दना	बैल के वृषण की तरह अधोभाग में द्विधाभूत आकृति तथा छोटे मुख वाली

- उपरोक्त के काटने पर मनुष्य में
  1. दंशस्थान पर शोथ
  2. बेहोशी
  3. दाह
  4. मद
  5. अधिक मात्रा में कण्डू
  6. ज्वर
  7. वमन
  8. सदन होती है।
- उक्त स्थिति में 'महागद' नामक औषधि पीने, आलेप एवं नस्य कर्म में प्रयुक्त होती है।
- 'इन्द्रायुधा' नाम जलौका से कष्ट हुआ रोगी असाध्य होता है।
- **निर्विष जलौका** -

कपिला	मनःशिला के समान पीतवर्ण के पार्श्वा वाली, पीठ पर चिकनाई और मूंग के समान रंग वाली।
पिंगला	लाल, गौल शरीर वाली, कुछ पिंग वर्ण की और शिघ्र चलने वाली
शंकुमुखी	यकृत के समान काले या बैगनी रंग वाली, शीघ्र रक्त को पीने वाली, लम्बे एवं तीक्ष्ण मुख वाली।
मूषिका	मूषिका के समान आकृति एवं रंगवाली एवं दुर्गन्धित
पुण्डरीक मुखी	मूंग के समान हरे वर्ण की तथा कमल के समान मुख वाली
सावरिका	चिकनी कमल के पत्ते के समान रंग 18 अंगुल लम्बी पशुओं के दूषित रक्तावसेचन में प्रयुक्त

Copyrighted material

- **जलौका के क्षेत्र** -
    - यवन
    - पाण्डय
    - सह्य
    - पौतन
- जिन देशों मे विषयुक्त मत्स्य, कीट एवं मेढ़क के मल एवं मूत्र की सड़न होती है वहां कलुषित जल में सविष जलौकाएं पैदा होती है।
- पद्म (किचिंद्वखेत कमल), उत्पल (नील कमल), नलिन (रक्त कमल), कुमुद, सौगन्धिक (सुगन्धि कमल), कुवलय पुण्डरीक (श्वेत कमल) और शैवाल इनके कोथ तथा निर्मल जल में निर्विष जलौकाएं उत्पन्न होती है।
- निर्विष जलौकाएं गहरे एवं सुगन्धित पानी वाले जलाशयों में रहती है। संकीर्ण स्थानों में नहीं घूमती तथा संकीर्ण (विषैले) चीजों को भी नहीं खाती तथा कीचड़ वाले स्थान में निवास नहीं करती है।
- इन जलोकाओं को गीले चमड़े से या सद्योहत प्राणी की मांसपेशी पर मक्खन, घृत और दुग्ध लगाकर इनके मुख की तरफ कर देते हैं। फिर पकड़ लेते है।
- शैवाल, वैल्लूर (शुष्क मांस), कशेरू, सिंघाड़ा, कमलनाल आदि जल में होने वाले कन्दों का चूर्ण कर जलौका को खाने को देते हैं।
- 3-3 दिन पर घड़े के पानी एवं खाद्य पदार्थो को बदलतें है
- 7-7 दिन पर घड़े को बदलतें है
- जलौका घोड़े के खुर के समान मुख करके रक्त पान करती है
- जलौका को दंश स्थान से हटाने के लिए सैंधव लगाते है
- दुर्वान्ता जलौका को **इन्द्रमद** नामक असाध्य व्याधि हो जाती है । इसे वागभट ने **रक्तमता** कहा है।
- वाग्भट के अनुसार एक बार प्रयुक्त जलौका को सात दिन तक पुंनः प्रयोग नही करना चाहिए।

Copyrighted material

रस वर्णन -

- पन्चभूतों से निर्मित तथा पेय लेह्य भक्ष्य एवं भोज्य चार प्रकार के, शीत एवं ऊष्ण द्विविध वीर्य वाले अथवा शीत, ऊष्ण, स्निग्ध, रुक्ष, विशद, पिच्छिल, मृदु, तीक्ष्ण इन 8 वीर्य वाले गुरु मन्दादि अनेक गुणवाले, आहार विधि के अनुसार प्रयुक्त तथा पाचकाग्नि द्वारा पूर्णरूप से पक्व आहार का जो तेजोभूत सार भाग है उसे रस कहते हैं।
- रस का स्थान हृदय है।
- हृदय से रक्त 24 धमनियों (10 उर्ध्व, 10 अधः, 4 तिर्यक धमनियों) में प्रविष्ट होकर सम्पूर्ण शरीर को तृप्त करता है, बढ़ाता है, प्रसारित करता है और यापन करता है।
- रस द्रव के समान अनुसरण (गतिशील) होने से तथा शरीर को स्नेहन, जीवन, तर्पण, धारण करने से सौम्य (जलतत्वात्मक या कफमय) है।
- रस प्रथम प्लीहा में जाकर राग (रक्त रूप) को प्राप्त होता है।

रक्त वर्णन -

- देह धारियों में रहने वाले (रन्जक पित्त) से रन्जित (रक्तता को प्राप्त हुए) तथा तथा अव्यापन्न (अविकृत निर्मल) जो आहार प्रसादाख्य जलीय रस है वह रक्त कहा जाता है।
- अष्टांग हृदयंकार रन्जक पित्त को आमाशय में मानते हैं।
- शारंगधर रस का रक्त में रन्जक पित्त द्वारा परिणत होना हृदय में मानते हैं।
- रस से ही स्त्रियों में रजःसंज्ञक रक्त परिवर्तित होता है। यह रज नाम का रक्त (रजोदर्शन) 12 वर्ष की आयु के पश्चात होकर 50 वर्ष के आस-पास नष्ट हो जाता है।
- रसादेव में एवं शब्द निश्चयात्मक है अर्थात् निश्चित है।
- रज, रस से निर्मित होता है किन्तु रज अग्निगुण प्रधान होता है उसमें रस की सौम्यता नहीं होती क्योंकि गर्भ अग्नि एवं सोम गुण प्रधान होता है।
- **रक्त में पांचभैतिक गुण** -
    - विस्रता/आम गन्धिता-पृथ्वी का गुण
    - द्रवता-जल का गुण
    - स्पंदन-वायु का गुण
    - राग-अग्नि का गुण
    - लघुता-आकाश का गुण होता है अतः रक्त पान्चभौतिक है।

- **धातु निर्माण -**

Copyrighted material

रक्ताद्रक्तं ततो मंसं मांसान्मेदः प्रजायते।

मेदसोऽस्थि ततो मज्जा मज्ज्ञः शुक्र तु जायते।

- रस से रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेद, मेद से अस्थि, अस्थि से मज्जा एवं मज्जा से शुक्र उत्पन्न होता है।
- सब प्रकार की धातुओं को अन्नपान से उत्पन्न रस तर्पित करता है।
- पुरूष भी रस से ही उत्पन्न होता है।
- रस निरुक्ति -

तत्र रस गतौ धातु, अहरर्गच्छतीत्यतो रसः।।

- गत्यर्थक रस धातु से रस शब्द बना है,
- लगातार जो गतिशील हो उसे रस कहते है।
- यह रस 3015 कला तक एक धातु में ठहरता है।
- एक माह में रस पुरुषों में वीर्य तथा स्त्रियों में आर्तव के रूप में परिणत होता है इस रस से शुक्र बनने के समुच्चय में इस तन्त्र तथा अन्य तन्त्रों के अनुसार 18090 कला समय लगता है।
- **रस -**
  - शब्द सन्तान की तरह तिर्यक
  - अर्चि सन्तान की तरह ऊध्वगामी
  - जल सन्तान की तरह अधोगामी होकर शरीर में अनुधावन करता रहता है।
- वाजीकरण औषधियाँ अपने प्रभाव से विरेचक औषधियों की तरह शुक्र का शीघ्र विरेचन करती है।
- बालकों में अवस्था बढ़ने पर शुक्र का प्रादुर्भाव होता है तथा रोम राजी उत्पन्न होती है एवं स्त्रियों में रोम राजी होने साथ-साथ रज के धीरे धीरे सन्चित होने से स्तन गर्भाशय और योनि की वृद्धि होती है।
- वे रसादि सात धातुएं शरीर का धारण पोषण करती है इसलिए इन्हें धातु कहा जाता है।
- धातुओं की क्षीणता और वृद्धि रक्त के कारण होती है।
- **वात से दूषित रक्त**-
  - झागदार
  - किन्चिद्रक्त व कृष्ण
  - रुक्ष
  - तनु
  - शीघ्र बहने वाला
  - न जमने वाला

Copyrighted material

- **पित्त से दूषित रक्त**-
    - नीत,पीत, हरे काला वर्ण का (आम) गन्ध वाला
    - विस्र गंध वाला
    - चीटी एवं मक्खी को अप्रिय
- **कफ से दूषित रक्त**-
    - गैरिकोदक के समान
    - स्निग्ध, शीत
    - बहल सांद्र
    - चिरस्रावी -मन्द गति से बहने वाला
    - मांसपेशी प्रभं
- **त्रिदोष से दूषित रक्त**-
    - तीनों के लक्षणों से युक्त
    - कान्जी के समान
    - अधिक दुर्गन्धि वाला
- रक्त दोष से दूषित रक्त, पित्त दुष्टरक्त के लक्षणों वाला होता है। किन्तु वह अधिक श्याव वर्ण का होता है।
- दो दोषों के लक्षणों वाला रक्त द्विदोषदुष्ट होता है।
- शुद्ध रक्त के लक्षण-

    इन्द्रगोप प्रतीकाशमसंहतमविवर्ण च प्रकृतिश्च जानीयात्।

    -इन्द्रगोप के समान लाल वर्ण का, असंहत अर्थात् न बहुत पतला, न अधिक गाढ़ा हो एवं विकृत वर्ण वाला न हो उसे शुद्धरक्त समझना चाहिए।
- **अविस्राव्य** (रक्त निकालने के अयोग्य) -
    - सर्वांग शोफ से पीडित
    - क्षीण पुरुष का अम्ल पदार्थों के सेवन से उत्पन्न शोथ तथा
    - पाण्डुरोगी और उदररोगी,
    - शोषरोगी तथा
    - गर्भिणी स्त्री के शोथ में रक्त नहीं निकालना चाहिए।
- शस्त्र द्वारा रक्त विस्रावण दो प्रकार का होता है-
    1- प्रच्छान
    2- सिरावेध
- मर्म, सिरा, स्नायु तथा संधियों का बचाव करते हुए शीघ्र शस्त्र द्वारा दूषित स्थान पर प्रच्छान करना चाहिए।

Copyrighted material

- मद, मूर्च्छा, श्रम से पीड़ित, अपान वायु मल-मूत्र के अवरोध वाले तथा निद्रा से व्याप्त, डरे (भीत) मनुष्यों का रक्त ठीक प्रकार से नहीं निकलता है।
- उस मनुष्यों का दूषित रक्त शरीर से न निकलने पर देह में कण्डू, शोफ, लालिमा, जलन, पाक और वेदना उत्पन्न करता है।
- निम्न मे रक्त अधिक मात्रा में निकलता है।
    - अधिक ऊष्ण ऋतु में
    - अधिक स्वेदन करने पर
    - अङ्गों द्वारा विस्रावण करने पर,
- **रक्त स्राव के अतियोग -**
    - शिरोरोग
    - अन्धता
    - अधिमन्थ
    - तिमिर
    - धातुक्षय,
    - आक्षेपक, पक्षाघात,
    - हिक्का श्वास
    - पाण्डुरोग तथा मृत्यु जनक होता है।
- न शीतकाल में, न अति ऊष्ण के काल में न अधिक स्वेदन कराकर , न अधिक तपाकर रक्त मोक्षण करें।
- प्रथम रोगी को यवागू पान कराकर रक्त मोक्षण करना चाहिए।
- दूषित रक्त बहना बन्द होने पर सम्यग विस्रावण समझना चाहिए।
- सम्यग विस्रावण के लक्षण-
    - शरीर में हल्कापन
    - पीड़ा का शान्त होना
    - रोग की तीव्रता कम होना
    - मन का प्रसन्न होना
- समय-समय पर रक्त मोक्षण कराते रहने पर त्वग दोष, ग्रंथिरोग, शोफरोग कभी नहीं होते हैं।
- डल्हण के अनुसार रक्तमोक्षण के पश्चात
    - पित्त दोष में क्षीर
    - कफ दोष में यूष
    - वात दोष में मांस देना चाहिए।
- रक्तातिस्राव को रोकने के उपाय -

Copyrighted material

- सन्धान
- स्कन्दन
- पाचन
- दहन

- रक्तातिस्राव को रोकने के चि. क्रम -

  शीतोपचार→ सन्धान→ पाचन→ दहन

Copyrighted material

सुश्रुत सूत्रस्थान- 15 - दोषधातुमलक्षयवृद्धि

- दोष धातु एवं मल शरीर के कारण हैं।
  दोषधातुमलमूलं हि शरीरम्
- वात के कार्य-5
  - प्रस्पन्दन (व्यान)
  - उद्वहन (उदान)
  - पूरण (प्राण)
  - विवेचन (समान)
  - धारण (अपान)
- पित्त के कार्य-5
  - राग (रन्जक)
  - पक्ति (पाचक)
  - तेज (आलोचक)
  - मेधा (साधक)
  - ऊष्मा (भ्राजक)
- श्लेष्मा के कार्य -5
  - सन्धियो मे संश्लेषण
  - स्नेहन
  - रोपण
  - अक्षि या शरीर का पूरण
  - बल एवं स्थैर्य
- धातुएं -

रस	शरीर को तुष्टि प्रीणन तर्पण एवं
	रक्त को पुष्ट करता है।
रक्त	शरीर के वर्ण का प्रसादन
	मांसधातु का पोषण और
	जीवनदान
मांस	शरीर एवं मेद धातु का पोषण
मेद	शरीर में स्नेहन, स्वेद एवं दृढ़ता
	अस्थि का पोषण
अस्थि	देहधारण एवं मज्जा की पुष्टि

Copyrighted material

मज्जा	शरीर में प्रसन्नता, स्निग्धता, बल, शुक्र की पुष्टि और अस्थियों का पूरण
शुक्र	शरीर में धैर्य अथवा वीर्य वृद्धि, प्रसन्नता बल एवं प्रहर्ष तथा वीर्योत्पत्ति

- **धातुमल एवं कार्य** -
  - पुरीष - शरीर का उपस्तम्भन तथा वायु अग्नि को धारण
  - मूत्र - बस्ति का पूरण, शरीर में आर्द्रता
  - स्वेद - शरीर में क्लेद एवं त्वचा को कोमल करता है।
- शरीर के साधारण रक्त की तरह आर्तव रक्त होता है वह गर्भ की स्थिति करता है।
- गर्भ, गर्भ के लक्षणों को उत्पन्न करता है,
- स्तनों में होने वाला दुग्ध स्तनों की पुष्टता करता है तथा जीवन देता है।
- **दोषों को क्षीण होने पर लक्षण-**

वात क्षीणता	पित्त क्षीणता	कफ क्षीणता
शरीर की चेष्ठा कम	शरीर की ऊष्मा मंद	सम्पूर्ण शरीर में रूक्षता,
बोलने की शक्ति अल्प	शरीर प्रभाहीन	अंतर्दाह , तृष्णा
मन की प्रसन्नता का अभाव	पाचकाग्नि मन्द	आमाशय के अतिरिक्त श्लेष्मा स्थनों में शून्यता
संज्ञा का अल्प होना		देह दौर्बल्य , अनिद्रा

- **क्षीण धातुओ के लक्षण-**

रस क्षीणता	हृत्पीड़ा, कम्प, शून्यता, तृष्णा
रक्त क्षीणता	त्वग पारुष्य
	अम्लशीत प्रार्थना
	सिराशैथिल्य
मांस क्षीणता	स्फिक्, गण्ड, ओष्ठ, उपस्थ, उरु, वक्ष, कक्षा, पिण्डिका, उदर, ग्रीवा में शुष्कता एवं रूक्षता, तोद, गात्रसदन, धमनी शैथिल्य
मेद क्षीणता	प्लीहावृद्धि
	संधि शून्यता , रूक्षता
	मेदुरमांस प्रार्थना
	अस्थिशूल

Copyrighted material

अस्थि क्षीणता	दन्त नख भंग
मज्जा क्षीणता	अल्पशुक्रता
	पर्वभेद
	अस्थिनिस्तोद
	अस्थिशून्यता
शुक्र क्षीणता	मेढ्र वृषण वेदना
	मैथुन अशक्ति
	चिरकाल से वीर्य का निकलना ,स्राव में रक्त एवं शुक्र का दिखना

- **क्षीण मलों के लक्षण:-**

पुरीषक्षीणता-	हृत्पीड़ा, पाश्र्वपीड़ा
	शब्दयुक्त वायु की उध्र्व गति तथा
	उदर में वायु का संचार
मूत्र क्षीणता-	वस्ति में तोद,
	मूत्र कम होना
	मल एवं मूत्र क्षीणता में स्वयोनिवर्ध द्रव्यों का उपयोग करना चाहिए
स्वेद क्षीणता-	रोम कूप स्तब्ध
	त्वचा मे शुष्कता
	स्पर्श ज्ञान में विकृति
	स्वेद नाश
	स्वेद क्षीणता में तैल द्वारा अभ्यंग एवं स्वेदन करना चाहिए ।

- **आर्तव क्षीणता**-
  - उचित समय पर रजोदर्शन न होना
  - अल्प मात्रा में रज का निकलना
  - योनि वेदना
  - आर्तव क्षीणता में विरेचन और उत्तर वस्ति द्वारा संशोधन तथा
  - आग्नेय द्रव्यो का प्रयोग।
- **स्तन्य क्षीणता**-
  - स्तनों में ढीलापन या झुर्रियों का पड़ना
  - दुग्ध का अभाव

Copyrighted material

- स्तन्य क्षीणता में कफवर्धक द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिए।

- **गर्भ क्षीणता**-
  - गर्भ के स्पन्दन का अभाव
  - अनुन्नत कुक्षि
  - गर्भ क्षीणता में यदि गर्भिणी का आठवा मास शुरु हो जाय तो क्षीर वस्ति का प्रयोग तथा मेध्य अन्न का सेवन कराना चाहिए।

वृद्धि दोष के लक्षण-

- **वात वृद्धि** -
  - वाकपारुष्य, कार्श्य
  - गात्रस्फुरण, ऊष्णकामता
  - अनिद्रा, अल्पबलत्व,
  - गाढवर्चः
- **पित्तवृद्धि** -
  - पीतावभासता
  - सन्ताप
  - शीतकामित्व
  - अल्पनिद्रा
  - मूर्च्छा
  - बलहानि
  - इन्द्रिय दौर्बल्य
  - पीतविण्मूत्र एवं नेत्र
- **कफ वृद्धि**-
  - शौक्ल्य
  - शीतल शरीर रहना
  - स्थैर्य
  - गौरव
  - अवसाद
  - तन्द्रा
  - निद्रा
  - संधि-अस्थि विश्लेष

- **वृद्ध धातुओं के लक्षण-**

Copyrighted material

रस वृद्धि	हृदयोत्क्लेद,
	प्रसेक
रक्त वृद्धि	रक्तांगाक्षिता
	सिरा पूर्णत्व
मांस वृद्धि	स्फिग, गण्ड, ओष्ठ, उपस्थ, उरू, बाहु, जंघा में अधिक वृद्धि तथा
	शरीर में गौरव
मेद वृद्धि	स्निग्धांगता
	उदर पार्श्व वृद्धि
	कास श्वास
	शरीर में दुर्गन्ध
अस्थि वृद्धि	चणकास्थि तथा अधिदन्त को उत्पन्न करती है।
मज्जा वृद्धि	सर्वांग नेत्र गौरव
शुक्र वृद्धि	शुक्राश्मरी तथा
	वीर्य का अधिक पात करता है।

वृद्ध मल के लक्षण-

- पुरीष वृद्धि-
  - आटोप एवं
  - कुक्षिशूल
- मूत्र वृद्धि -
  - मूत्र वृद्धि,
  - बार-बार मूत्र प्रवृत्ति
  - वस्ति तोद
  - आध्मान
- स्वेद वृद्धि -
  - त्वचा दौर्गन्ध
  - कण्डू
- आर्तव वृद्धि के लक्षण -
  - अंगो में वेदना
  - रजस्राव अधिक
  - दौर्बल्य

Copyrighted material

- स्तन्य वृद्धि के लक्षण -
    - स्तन में स्थूलता,
    - बार-बार स्तन्य की प्रवृति,
    - स्तनों में तोद
- गर्भ वृद्धि के लक्षण-
    - जठर वृद्धि (उदर वृद्धि)
    - स्वेद बाहुल्य
- बढ़े हुए दोष, धातु एवं मलों का क्षय के अविरूद्ध यथाविहित विशेष क्रियाओं द्वारा संशोधन तथा क्षपण (शमन) करना चाहिए।
- चरक में भी ऐसी चिकित्सा बताई गयी है।
- **ओज-**

    तत्र रसादीनां शुक्रान्तानां धातूनाम् यत्परं तेजस्तत् खल्वोजस्तदेव बलमित्युच्यते।

    -रसादिक तथा शुक्रान्त धातुओं के उत्कृष्ट सार भाग को ओज कहते हैं।
- स्वशास्त्रानुसार उसी का दूसरा नाम बल है।
- ओज के गुण-

    सौम्य, स्निग्ध, शुक्ल, शीतवीर्य, स्थिर, सर विविक्त अर्थात् श्रेष्ठ गुणों वाला, मृदु, पिच्छिल एवं प्राणों का उत्तम आधार है।
    - ओज से मनुष्य का शरीर व्याप्त रहता है।
    - वाग्भट्ट ने अ.हृ. में ओज को शुक्र का मल माना है।
    - अ.सं. ने ओज को शुक्र का सार माना है।
    - ओज का स्थान हृदय है।
- ओज क्षय के कारण-7
    1. चोट लगने से,
    2. क्षयात,
    3. कोप,
    4. शोक,
    5. ध्यान
    6. श्रम,
    7. क्षुधा,

- विकृत ओज के लक्षण-3,
    1. विस्रंस,
    2. व्यापद,

Copyrighted material

3. क्षय

- **विस्रंस** -
  - संधियों का विष्लेष,
  - गात्रसदन,
  - क्रियासन्निरोध
- **व्यापत्** -
  - शरीर के अंगों का निश्चल तथा भारी होना,
  - वातिक शोथ
  - देह के वर्ण का बदलना,
  - ग्लानि तन्द्रा निद्रा
- **क्षय** -
  - मूर्च्छा
  - मांसक्षय
  - मोह प्रलाप
  - मरण
- उपरोक्त लक्षण बलदोष के भी होते हैं।
- विस्रंस एवं व्यापत् की अवस्थाओं में विशेष क्रियाओं से रोगी के बल को बढ़ाना चाहिए। ओजक्षय के क्षीण संज्ञा वाले रोगी की चिकित्सा नहीं करनी चाहिए।
- वाग्भट्ट विशेष क्रियाओं में जीवनीय औषध, क्षीर, रसायन को माना है।
- अति स्थौल्य रोग के उत्पन्न होने (शिलाजतु, यव उदालक, व्यायाम) पर रूक्ष एवं छेदनीय पदार्थों का यथाविधि सेवन कराना चाहिए एवं व्यायाम एवं लेखन वस्ति का प्रयोग हितकर है।
- कार्श्य रोग उत्पन्न होने पर मधुर रस वाली औषधियों का सेवन, बृंहण बस्ति का उपयोग करना चाहिए।
- चरक ने कृश के दो भेद किये हैं-
  1. सद्यः क्षीण
  2. चिर क्षीण
- अति स्थूल एवं अतिकृश मनुष्य गर्हित माने गये हैं, किन्तु मध्य शरीर का मनुष्य श्रेष्ठ हैं।
- स्थूल की अपेक्षा कृश अच्छा होता है।
- स्वस्थ परिभाषा -

  समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः ।
  प्रसन्नात्मेन्द्रिय मनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते।
- **प्रमाण** -

Copyrighted material

- स्वेद - 10 अंजलि
- उदक - 10 अंजलि
- रस - 9 अंजलि
- रक्त - 8 अंजलि
- पुरीष - 7 अंजलि
- श्लेष्मा - 6 अंजलि
- पित्त - 5 अंजलि
- मूत्र - 4 अंजलि
- आर्तव - 4 अंजलि
- वसा - 3 अंजलि
- मेद - 2 अंजलि
- मज्जा - 1 अंजलि
- स्तन्य - 2 अंजलि
- शुक्र -1/2 अंजलि
- ओज -1/2 अंजलि
- मस्तुलुंग - 1/2 अंजलि
- वात - 1 कुडव

- चक्रपाणि-
  - 1/2 अंजलि अपर ओज
  - 8 बूंद पर ओज
- सुश्रुत-
  - स्थौल्य व कार्श्य रस निमित्त होता है।
  - अतिस्थौल्य मेदपुष्टि से होता है।
- चरक के अनुसार स्थौल्य व कार्श्य - निद्रा व आहार निमित्त होता है।
- सुश्रुत ने दोष धातु मलो के परिमाण को नहीं बताया है।

Copyrighted material

- **कर्ण वेधन का उद्देश्य**-
  - रक्षा एवं भूषण के लिए
  - छठें या सातवें मांस मे करते है
  - शुक्ल पक्ष की उत्तम तिथि में
  - अपने वामहस्त से बच्चे का कर्ण खींच कर दैवकृत छिद्र के सूर्य किरणों द्वारा दिखाई देने पर धीरे-2 दक्षिण हस्त से उस छिद्र में सीधा वेधन करना चाहिए।
  - पतले कर्ण में सूई से तथा मोटे कर्ण में आरा से व्यधन करना चाहिए।
  - डल्हण के अनुसार बच्चे के जन्म को न लेकर, प्रथम माह भाद्रपद मानकर छठें माघ माह या 7 वें फाल्गुन माह में कर्ण बेधन करना चाहिए।
  - वाग्भट्ट ने हिम ऋतु में कर्ण वेधन को कहा है।
- **कर्ण वेधन स्थल** -
  - अन्य देश विद्ध होने पर रक्त का अधिक स्राव तथा पीड़ा होती है।
  - जब वेधन कालिका, मर्मरिका, लोहितका सिराओं में होता है तो निम्न उपद्रव उत्पन्न होते हैं।

कालिका	ज्वर दाह वेदना
मर्मरिका	वेदना, ज्वर
लोहितिका	मन्यास्तम्भ, अपतानक, शिरोग्रह, कर्णशूल

- योग्य बेधन हो जाने पर तिल के कच्चे तैल से व्रण का परिसेचन करना चाहिए तथा 3-3 दिन के अन्तर से रूई की वर्तिका उत्तरोत्तर मोटी प्रविष्ट कर आमतैल से सेचन करते रहना चाहिए।
- उपद्रवों के शान्त होने के पश्चात् छिद्र को बड़ा करने के लिए छोटे-2 वर्धनकों का प्रयोग करते हैं।
- **कर्ण संधान की विधियां**-
  - 1. नेमिसन्धानक - साध्य
  - 2. उत्पल भेद्यक - साध्य
  - 3. वल्लूरक - साध्य
  - 4. आसंगिम - साध्य
  - 5. गण्डकर्ण - साध्य
  - 6. आहार्य - साध्य
  - 7. निर्वेधिम - साध्य

Copyrighted material

- 8. व्यायोजिम - साध्य
- 9. कपाटसंधिक - साध्य
- 10. अर्धकपाटसंधिक - साध्य
- 11. संक्षिप्त - असाध्य
- 12. हीन कर्ण - असाध्य
- 13. वल्लीकर्ण - असाध्य
- 14. यष्टिकर्ण - असाध्य
- 15. काकौष्ठ - असाध्य

- **बंधन प्रयोग -**

नेमिसंधानक	यदि कर्णपालि के दोनों भाग मोटे फैले हो तथा समान हों
उत्पल भेद्यक	जिसकी दोनों कर्णपालियां गोल दीर्घ तथा समान हो
वल्लूरक	यदि छोटी, गोल और समान दोनों कर्णपालियां होने पर
आसंगिम	जिसकी भीतरी एक गर्णपाली दीर्घ हो तो वहां पर बन्ध
गण्डकर्ण	यदि बाहर की कर्ण पाली दीर्घ हो तो
आहार्य	जब दोनों कर्ण पालियां न हो तो
निर्वेधिम	यदि दोनों कर्ण पालियां मूल से ही छिन्न हो तो पुत्रिका के शेष भाग का आश्रय करके
व्यायोजिम	यदि पालि का एक भाग स्थूल हो तथा दूसरा सूक्ष्म हो एवं एक समान तथा दूसरा विषम हो
कपाटसन्धिक	एक पाली भीतर से लम्बी हो यतथा दूसरी पाली अल्प हो
अर्धकपाट सन्धिक	यदि पाली का बाहरी भाग दीर्घ एवं भीतर अल्प हो
संक्षिप्त	यदि बाह्य पाली का शष्कुली भाग शुष्क हो गया हो तथा पाली का भाग नष्ट हो एवं दूसरा भी अल्प हो तो वहां पर पाली का अधिष्ठान ही न हो तथा गण्ड के दोनों तरफ बाह्य भाग में मांस क्षीण हो
हीनकर्ण	जहा पाली का अधिष्ठान न हो तथा गण्ड के दोनो तरफ बाह्य भाग मे मांस क्षीण हो
बल्लीकर्ण	यदि पाली पतली, टेढ़ी मेढ़ी व अल्प हो
यष्टिकर्ण	यदि पाली के मांस में गाठें पड़ गई हो, सिराए कुटिल एवं स्तब्ध हो और पाली छोटी हो
काकौष्ठक	यदि पाली मांस रहित, संक्षिप्त अग्रभाग वाली तथा अल्परक्त युक्त

- कर्ण संधान में प्रक्षालन से पहले रक्त का विचार करना चाहिए।

Copyrighted material

- वातदूषित रक्त मे - काजी, गर्म जल से
- पितदूषित रक्त मे - ठण्डा जल, दुग्ध से
- कफदूषित रक्त मे - सुरामण्ड, गर्म जल से से कानों को प्रक्षालित कर उस स्थान का लेखन कर्म करके संधान करना चाहिए।

- **कर्ण संधान पश्चात् वर्ज्य** -
  - कर्ण का किसी के साथ विघट्टन
  - दिवाशयन
  - व्यायाम
  - अति भोजन
  - स्त्री सम्भोग
  - अग्नि या सूर्य का ताप
  - अधिक भाषण
  - परिश्रम
- बन्धन के समय अशुद्ध रक्त बहने पर, अति रक्त बहने पर तथा अल्प रक्त बहने पर संधान नहीं करना चाहिए।
- **विभिन्न दोष** -
  - वात दूषित रक्त में संधान करने से रोपित होने पर भी **परिपोट रोग** होता है।
  - पित्त दुष्ट रक्त में संधान करने से -दाह पाक राग वेदना
  - कफ दूषित रक्त में संधान करने से -स्तब्धता एवं कण्डू
  - रक्त की अतिप्रवृत्ति में संधान करने से - कृष्णता नीलिमा शोथ
  - क्षीण रक्त की अवस्था में संधान करने से- मांस वृद्धि नहीं होती
- तिल्ली के कच्चे तेल द्वारा 3 दिन तक परिषेक एवं प्रत्येक तीसरे दिन पिचु का परिवर्तन करना चाहिए।
- जो कान उक्त प्रकार के स्वेदन स्नेहन एवं उद्वर्तन तथा अभ्यंग करने से नहीं बढ़ते हों उनके अपांग प्रदेश को प्रच्छान करना चाहिए।
- कर्ण के बाह्य प्रदेश में प्रच्छान नही करना चाहिए क्योंकि वहां सिरादि मर्म होने से निश्चित ही अनेक व्यापदे उत्पन्न होती हैं।
- **कर्ण पाली में औपद्रविक रोग-**
  - उत्पाटक
  - उत्पुटक
  - श्याव
  - अवमन्थ
  - सकण्डूक

Copyrighted material